

संपादक

अभिजीत कुमार, 9431006107

समाचार संपादक

अखिलेश कुमार, 9431089053

विशेष संपादक

मुकेश कुमार सिंह

सहायक संपादक

कोमल सुलतानिया

राजनीतिक संपादक

प्रो. नीरज कुमार सिंह, 9431049337

संपादकीय सलाहकार

राजीव कुमार सिंह 9431210181

कॉन्सेप्ट एडिटर

अनूप कुमार शर्मा, 7004821433

राजनीतिक व्यूरो

अमरेन्द्र शर्मा 9899360011

प्रभाकर कुमार राय

प्रबंधक

अविनाश कुमार 8287266244

विधि सलाहकार

वीणा कुमारी जयसवाल, पटना हाई कोर्ट

बिहार व्यूरो

अनूप नारायण सिंह 9546224277

क्राइम व्यूरो

एसएन श्याम

मुख्य संचादकाता

सोनू सिंहा, 9431006189

आशीष कुमार

जिला व्यूरो

बेगूसराय : विरेश कुमार सिंह, 9430415316

अमित सिंह, 9430595995

भागलपुर प्रमंडल : राजेश पंजिकार,

(व्यूरो चीफ), 9334114515

समस्तीपुर : राजेश कुमार

चांदन : अमोद कुमार दूबे : 8578934993

मुंगेर : सिद्धांत

कटोरिया : दीपक चौधरी, विशेष संचादकाता

9973077043

सुईया : चन्द्रशेखर मिश्र (संचादकाता)

बिहार-झारखण्ड : अभिनव कुमार 7903292877

दिल्ली : नवल वत्स, 9818901841

स्वाति, रंजीत कुमार

ग्रेटर नोएडा : गौरीशंकर, 8920215318

प्रधान कार्यालय

गिरिराज सदन, हनुमान नगर, संजय गांधी नगर, काली

मंदिर रोड नं.- 7, पटना - 800 020 (बिहार)

मो.- 9431006107, 9939815347

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक : अभिजीत कुमार

गिरिराज सदन, हनुमान नगर, संजय गांधी नगर, काली

मंदिर रोड नं.- 7 पटना - 800 020 (बिहार) से

प्रकाशित व एस. एम. ऑफसेट पंडुईकोटी लंगर टोली,

डीएन दास लेन, पटना-800 004, से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित किसी भी रचना के विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेवार होंगे। इसके लिए संपादक से सहमति जरूरी नहीं। पत्रिका से संबंधित सभी विवादों का निबटारा पटना उच्च न्यायालय से होगा।

संरक्षक



डॉ. संजय मयूरक

राष्ट्रीय सह मीडिया प्रभारी
माजपा

जय जयराम सिंह

JJRS CONSTRUCTION
PVT. LTD.

चर्चित बिहार

वर्ष : 9, अंक : 10, जून 2022, मूल्य : 25/- राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका



05

भारत विरोधी तत्वों में भरा जहर है ढंगों की वजह



मुस्लिम महिलाओं के लिए ...

07



बॉलीवुड को ग्रसता दक्षिण ...

11



जीवन की रक्षा के लिए पृथ्वी...

13



राज ठाकरे: अक्सरवादी विकृत...

09

बच्चों को समय दें अभिभावक

उ

तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ की वह घटना रोगटे खड़े करने वाली है जिसमें ऑनलाइन गेम खेलने से रोकने वाली मां को नाबालिंग बेटे ने गोली मार दी। पश्चिम बंगाल में तैनात सेना के एक जूनियर कमीशंड अफसर के बेटे ने पिता के लाइसेंसी हथियार से अपनी मां को उस वक्त मार डाला जब वह रात में सो रही थी। प्रतिबंधित व विवादास्पद ऑनलाइन गेम पबजी खेलने का आदी यह किशोर इस बात से नाराज था कि मां उसे यह खेल नहीं खेलने देती। अब तक ऐसी खबरें विदेशों से आती थीं कि फलां लड़के ने छोटी सी बात पर मां-बाप की हत्या कर दी। श्रवण कुमार के देश में ऐसी घटनाएं विचलित कर रही हैं इतना ही नहीं, दुस्साहस की हृद देखिये कि उसने मां के शव को दो दिन घर में छुपाये रखा और छोटी बहन को आतंकित किया कि किसी को खबर दी तो उसे भी मार देगा। जब घर में रखे मां के शव से बदबू आने लगी तो पिता को यह कहकर फोन पर भ्रमित किया कि किसी ने मां की हत्या कर दी। संवेदनहीनता की पराकाष्ठा देखिये कि इस दौरान उसने दोस्तों को घर बुलाकर पार्टी की, बाहर से खाना मंगाया और दोस्तों के साथ पब्जी खेला। यहां तक कि पिता को गुमराह किया कि पिछ्ले दिनों घर में बिजली ठीक करने वाले इलेक्ट्रीशियन ने छत के रास्ते आकर मां को मार दिया। बाद में पुलिस की सख्ती व बहन के बयान से वह टूट गया। विडंबना देखिये कि बनारस के रहने वाले फौजी अफसर ने बच्चों को इसलिये लखनऊ में किराये का मकान लेकर रखा कि बच्चे राजधानी में अच्छी पढ़ाई कर सकें। मोबाइल-इंटरनेट के दौर में हमारे बच्चे किस दिशा में जा रहे हैं। प्लेय अनमोन बैटलग्राउंड यानी पबजी को लेकर देश में कई हादसे पहले भी सामने आये हैं जिसकी शिकायत अभिभावकों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से भी की थी। हालांकि भारत सरकार ने सौ से अधिक चीन में विकसित ऐस्स पर बैन लगा रखी है। उसमें पबजी भी शामिल है। इस प्रतिबंध के बाद भारत में मां-बाप ने राहत महसूस की थी, लेकिन वास्तव में यह पूरी तरह बंद नहीं हुआ। हादसे फिर भी प्रकाश में आते रहे। बताते हैं कि इस खेल का मोबाइल वर्जन तो बंद हुआ लेकिन डेप्क्टोप वर्जन मौजूद रहा। चोर दरवाजे से भी यह खेल बदल्सूर जारी रहा। सितंबर 2019 में भी कर्नाटक के बेलगावी जिले में एक 21 वर्षीय युवक ने पब्जी खेलने से मना करने पर अपने पिता की गला काटकर हत्या कर दी थी। दरअसल, इन खेलों की लत का शिकार हुए बच्चों से जब माता-पिता मोबाइल वापस लेते हैं तो बच्चों में चिड़चिड़ाहट व गुस्से के लक्षण दिखायी देते हैं। मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि हिंसक गेम खेलने से बच्चे संवेदनहीन और आक्रामक होने लगते हैं। वे बाहरी दुनिया से कटकर ऑनलाइन गेमों को ही असली दुनिया मानने लगते हैं। कुछ को लगता है कि इन खेलों में दक्षता हासिल करके उनके लिए रोजगार के नये अवसर खुल जाएंगे। मनोवैज्ञानिक व मनोचिकित्सक बता रहे हैं कि उनके यहां बड़ी संख्या में ऐसे मरीज सामने आ रहे हैं जो ऑनलाइन तकनीक के अधिक प्रयोग से अवसादग्रस्त हैं। गांवों के मुकाबले शहरों में यह लत ज्यादा है। ऐसे लोग तनाव में होने के कारण हिंसक व्यवहार करने लगते हैं। इस लत को धीरे-धीरे छुड़ाने के लिये परामर्श देने की जरूरत है। इसके अलावा कई ऐसे मामले भी प्रकाश में आये हैं जिसमें ऑनलाइन गेम में पैसा गंवाने के बाद बच्चों ने आत्महत्या कर ली। कहने को तो ये गेम मुफ्त हैं लेकिन कुछ नियम बच्चों को भ्रमित कर पैसे ऐंठने वाले भी हैं। कुछ स्वयंसेवी संगठनों की जनहित याचिका पर दिल्ली हाईकोर्ट केंद्र सरकार से बच्चों को ऑनलाइन गेम की आदत से मुक्त कराने के लिये राष्ट्रीय नीति बनाने को कह चुका है। दरअसल, कोरोना संकट के दौरान ऑनलाइन पढ़ाई के विकल्प ने भी बच्चों को ऑनलाइन खेलों की लत लगाई है। प्रतिबंध को सख्ती से लागू करना होगा लेकिन जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह की माता-पिता का बच्चों से निरंतर संवाद होना।

अभिजीत कुमार

संपादक

9431006107

cbhindi.news@gmail.com



गरीबी और अमीरी की चौड़ी खाई की विषमता



देश में गरीबी रेखा से ऊपर आने वाले लोगों की संख्या में बढ़ोत्तरी के साथ ही दिन प्रतिदिन अरबपतियों की संख्या में इजाफा होने के समाचारों के बीच आम आदमी और चंद अरबपतियों के बीच आमदनी की खाई दिन-प्रतिदिन गहरी होती जा रही है। एक हालिया अध्ययन में सामने आया है कि देश में 87 फीसदी लोगों की मासिक आय 50 हजार रु. से अधिक है। 19 फीसदी लोग 5 हजार मासिक इनकम के दायरे में आते हैं। यह आंकड़े पिछले दिनों अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के लेबर और एम्प्लॉयमेंट विभाग के एक अध्ययन में सामने आये हैं। हो सकता है कि आंकड़े कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो पर यह भी साफ है कि कमोबेस यह स्थिति वास्तविकता के सामने हैं। देश के सरकारी महकमों में स्वीपर या चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की पोस्ट के लिए जब

लोगों में लाखों कुछ करोड़ रुपए प्रतिमाह वेतन लेने वाले लोग भी शामिल हैं। यदि यह देखा जाए कि 50 हजार रु. मासिक आय के दायरे में कितने लोग हैं तो यह भी साफ हो जाता है कि केवल 1.4 फीसदी लोगों की मासिक आय 50 हजार रु. से अधिक है। एक हालिया अध्ययन में सामने आया है कि देश में 87 फीसदी लोगों की मासिक आय सरकारी महकमों के चपरासी से भी कम है। इसका सीधा-सीधा अर्थ यह हुआ कि देश में केवल और केवल 13 फीसदी लोग ऐसे हैं जिनकी मासिक आय महकमों के चपरासी से अधिक है। मजे की बात यह है कि देश में 0.2 फीसदी लोग ऐसे हैं जिनकी महीने की आय एक लाख रु. से अधिक है। इन 0.2 फीसदी

इंजीनियर तक आवेदन करने लगे हैं तो बनिये की दुकान और सरकारी महकमों में मिलने वाले वेतन के अंतर को साफ-साफ समझा जा सकता है। आखिर इतना अंतर क्या संदेश देता है?

दरअसल आम नागरिकों की आय के बीच यह अंतर ही समाज में खाई पैदा करने वाला है। एक और कुछ चंद लोग लाखों रुपए प्रतिमाह कमा रहे हैं तो देश की अधिकांश जनता की आय चपरासी से कम होना आय के असंतुलन को दर्शाता है। इसके अलावा यह भी साफ हो जाता है कि देश में विसंगती का कारण भी यह होता जा रहा है। एक तरफ किसी उत्पाद के भाव बढ़ते हैं तो इससे सीधे-सीधे आम आदमी यानी की 87 फीसदी



प्रभावित होते हैं वहीं भाव कम होने का प्रभाव भी सीधे-सीधे इन्हीं 87 फीसदी लोगों पर पड़ता है। आमदानी के इस असंतुलन का असर अपराध के आंकड़ों से जोड़कर देखा जा सकता है। रातों रात रईश बनने के फेर में समाज में क्राइम के आंकड़ों में बढ़ोत्तरी हो रही है। चोरी चकोरी, चैन स्ट्रेचिंग, लूट-पाट, साइबर क्राइम और इसी तरह के अन्य अपराधों के बढ़ने का कारण यह विसंगति ही है। कम आय वालों के दुभर जीवन के कारण समाज में एक तरह की सामाजिक विकृति आती जा रही है। एक और नौकरीपेशा व संगठित वर्ग के लोगों की आय में तय समय सीमा में बढ़ोत्तरी होती जा रही हैं वहीं असंगठित क्षेत्र के दैनिक मजदूरी या दुकान गोदाम में काम करने वालों की आय में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हो पा रही है। हालांकि सरकार ने इस क्षेत्र के लिए पहल की है। चिकित्सा सुविधाओं को सुधारा है। राजस्थान जैसे कुछ प्रदेशों में सरकारी अस्पतालों से निःशुल्क दवा

की उपलब्धता और केन्द्र सरकार की प्रधानमंत्री आयुष्मान योजना से अब इस वर्ग को राहत अवश्य मिलने लगी है। दरअसल सरकार को कोई ऐसी नीति अवश्य बनानी पड़ी जिससे न्यूनतम आय के इस अंतर को इस स्तर तक तो लाया जा सके कि आम आदमी की दैनिक जीवन की आवश्यकताएं तो पूरी हो सके। एक और आज आम आदमी को छाड़ाव तो उच्चे से उच्चे दिखाए जा रहे हैं वहीं आय में यह अंतर निश्चित रूप से गभीर चिंता का विषय है। आखिर चपरासी से भी कम वेतन पर गुजारा करना कितना मुश्किल भरा है इसे समझना होगा। देश की बहुसंख्यक जनता की आय का इतना न्यूनतम स्तर सोचने को मजबूर कर देता है। हालांकि परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा भी काम करने से परिवार की आय अवश्य बढ़ रही है पर जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए यह नाकाफी है। कहीं ना कहीं संतुलित आय का विकल्प खोजना ही होगा। नहीं तो यह

सामाजिक विसमता किसी दिन विस्फोट होगी और इसके दुष्परिणाम समाज को भुगतने पड़ेंगे। यूनिवर्सल बेसिक इनकम को इसका विकल्प इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि यूवीआई में किसी तरह की प्रोडेक्टिविटी नहीं है और एक तरह से देखा जाए तो यह किसी खेरात से कम नहीं होगी। सरकार को हाथ में हाथ धर कर सरकारी धन पर जीवन यापन की आदाओं पर अंकुश लगाना होगा वहीं इस तरह की व्यवस्था करनी होगी संगठित या असंगठित सभी वर्ग के कामदारों को जीवन यापन के लिए निश्चित आय तो प्राप्त हो ताकि सामाजिक जीवन तो कोई भी व्यक्ति आसानी से जी सके। हालांकि संगठित क्षेत्र में नौकरी के छोटे-से-छोटे पद के लिए उच्च व तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवाओं द्वारा आवेदन करना बेरोजगारी और इस तरह के रोजगार में भविष्य की सुरक्षा का भाव छिपा है जिसे भी सरकार को ध्यान में रखकर योजना बनानी होगी।

भारत विरोधी तत्वों में भरा जहर है दंगों की वजह



यह संयोग ही है कि जिन दिनों रामनवमी पड़ती है, उन्हीं दिनों मुस्लिम समुदाय का रोजे चल रहे होते हैं। कुछ ऐसा ही संयोग विक्रमी संवत के श्रावण के महीने का भी होता है। उन दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में हनुमान जी की पूजा स्वरूप महावीरी झंडा निकलता है, उन्हीं दिनों मुस्लिम समुदाय का रमजान का महीना पड़ता है। इसी तरह जिस वक्त हिंदू दुग्धार्जा का त्योहार मना रहे होते हैं, उन्हीं दिनों मुसलमान समुदाय का त्योहार मोहर्रम पड़ता है। चैत शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन हनुमान जी का जन्मोत्सव होता है। संयोगवश इस वक्त भी रमजान का महीना आता है। भारत में गंगा-जमुनी संस्कृति की यानी एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे के तीज-त्योहारों का साथ मनाने की बातें तो खूब की जाती हैं, लेकिन अक्सर होता यह है कि इन त्योहारों के मौके पर दोनों समुदायों के बीच झड़प और बाद में दंगे हो जाते रहे हैं। लेकिन पहले ऐसी घटनाएं इक्का-दुक्का ही होती थीं। लेकिन हाल के दिनों में ऐसी घटनाएं बढ़ गई हैं। ऐसे में सबाल उठना स्वाभाविक है कि अखिर क्या वजह है कि गंगा-जमुनी संस्कृति वाले देश में ऐसे मौकों पर दंगे बढ़ गए हैं?

मध्य प्रदेश का खरगोन हो या दिल्ली की जहांगीरपुरी का इलाका, जिस तरह यहां

रामनवमी और हनुमान जयंती के जुलूस पर विशेषकर मुस्लिम समुदाय की ओर से पथरबाजी हुई, झारखण्ड के कई कस्बों में रामनवमी के जुलूसों पर हमले हुए, उससे स्पष्ट है कि ऐसा अनायास नहीं हो रहा। अनायास का मतलब यह है कि किसी स्थानीय रंजिश या विवादवश जुलूस के दैरान झगड़ा बढ़ा और देखते ही देखते वह दो समुदायों का विवाद बनकर दंगा बन गया। हाल के दिनों में जिस तरह कट्टरता, विशेषकर मुस्लिम समुदाय के कुछ वर्गों में बढ़ी है, माना जा रहा है कि रामनवमी और हनुमान जयंती के जुलूसों पर हुए हमले उसी कट्टरता की देन है। गृह ऑफ इंटेलेक्चुअल एंड एकेडमिशन्यन की पांच सदस्यीय टीम ने दिल्ली के जहांगीरपुरी की फसाद की जो तथ्य खोजी रिपोर्ट जारी की है, उसके नतीजे साफ हैं। संक्षेप में इस समूह को जिया कहा जाता है। जिया का मानना है कि मस्जिदों के साथ चलने वाले मदरसों में बच्चों को पढ़ाई के साथ ही यह बताया जा रहा है कि गैर मुस्लिम काफिर हैं और उन्हें सबक सिखाया जाना चाहिए। आम मान्यता है कि महिलाएं चाहे किसी भी वर्ग की हों, वे अपनी प्राकृतिक बनावट की वजह से पुरुषों की तुलना में सहज और संवेदनशील होती हैं। लेकिन चाहे खरगोन का मामला हो या फिर जहांगीरपुरी का फसाद, वहां महिलाएं भी जुलूस पर पथर बरसातीं नजर आईं। खरगोन की एक मुस्लिम युवती के पथर बरसाते वीडियो तो अरसे



तक सोशल मीडिया की सुर्खियां बने रहे। जिया की तथ्यात्मक जांच रिपोर्ट में भी सामने आया है कि जहांगीरपुरी में भी मुस्लिम समुदाय की महिलाएं पथर बरसाने में आगे रहीं।

जिया की तथ्य जांच रिपोर्ट के अनुसार नागरिकता संशोधन अधिनियम पारित होने के बाद पूर्वी दिल्ली के जाफराबाद आदि इलाकों की सड़कों पर जो धरने और प्रदर्शन हुए, उसमें रोजाना जहांगीरपुरी से तीन-चार बसों में भर-भरकर मुस्लिम महिलाओं का समूह जाता रहा है। जिया ने अपनी खोजी रिपोर्ट में पाया है कि मुस्लिम महिलाओं को जाफराबाद ले जाना दरअसल उनकी कट्टरता की दिशा में प्रशिक्षित किए जाने का ही हिस्सा था। जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के पास भी नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ जो लंबा धरना चला, उसमें भी दिल्ली के तमाम इलाकों की मुस्लिम महिलाओं को ले जाया गया। वहां जो भाषणबाजी हुई, उसका लब्बोलुआब यह तथ्यहीन बात मुस्लिम समुदाय के लोगों के दिमाग में बैठाना था कि बहुसंख्यक यानी हिंदू समुदाय उसका दुश्मन है। जाहिर है कि इस तरह की तथ्यहीन बातें महिलाओं और बच्चों के दिमाग में भर दी गईं।

चाहे जहांगीरपुरी का दंगा हो या फिर कनॉटक में हिजाब पर उठा विवाद हो, हर जगह के मामले में पीपुल्स फ्रंट ऑफ इंडिया यानी पीएफआई का हाथ सामने आ रहा है। यहां यह बताना जरूरी है कि पीएफआई पूर्ववर्ती संगठन सिमी का ही नया रूप है। जब सिमी ने इस्लाम के नाम पर आतंकी गतिविधियां फैलानी शुरू कीं, तो उस पर प्रतिवंध लगने शुरू हुए। उसके बाद उसने नाम बदल

लिया। पीएफआई आजकल हर ऐसे आंदोलन के पीछे खड़ा हो रहा है। मुस्लिम समुदाय के लोगों को भड़काने में उसकी बड़ी भूमिका बार-बार सामने आ रही है।

मदरसा हो या फिर महिलाओं के ट्रेनिंग सेंटर या फिर कोई और जगह, हर जगह पीएफआई और दूसरे संगठन इस्लामिक कट्टरवाद को फैला रहे हैं। इसकी वजह से अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के मन में लगातार जहर भरता जा रहा है। यही वजह है कि जब रामनवमी, हनुमान जयंती या फिर महावीरी झंडा का जुलूस निकलता है, इसी जहर की वजह से शांति विरोधी तत्व इन तत्वों को उकसाते हैं।

और फिर दो भड़कना आसान हो जाता है। यह जहर नहीं तो और क्या है कि जहांगीरपुरी के दंगों के बाद वहां की मुस्लिम महिलाएं यह कहती नजर आईं कि क्या मस्जिद के सामने जुलूस के लोग चुप नहीं रह सकते। महिलाएं यहां तक कहती नजर आईं कि हमारे रोजे के बक्त वे लोग उकसाते हैं तो हम कैसे चुप रह सकते हैं। यही स्थिति मस्जिदों में चलने वाले मदरसे में पढ़ने वाले बच्चों की प्रतिक्रिया भी कुछ वैसी ही है।

केंद्र की मोदी सरकार अब तक की पहली सरकार है, जिसने अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए काफी धन खर्च किया है। अल्पसंख्यक मंत्रालय का बजट 2013-14 में तीन हजार एक सौ 30 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2022-23 में पांच हजार बीस करोड़ रुपये कर दिया गया है। अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री मुख्यालय अब्बास नकवी ने लोकसभा के बीते सत्र में एक सवाल के जवाब में बताया है कि अल्पसंख्यक समुदायों की शिक्षा के लिए 2013-14 में एक हजार आठ सौ 88 करोड़ रुपये का

बजट आवंटन 2022-23 में बढ़ाकर दो हजार पांच सौ 15 करोड़ रुपये किया गया है। जाहिर है कि यह सरकार अल्पसंख्यकों के विरोध में नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश अल्पसंख्यक विशेषक मुस्लिम समुदाय में यह बात जानबूझकर फैलाई जा रही है कि मोदी और भारतीय जनता पार्टी की सरकार मुसलमानों की विरोधी है। नागरिकता संशोधन कानून के बारे में भी योजनाबद्ध तरीके से फैलाया गया कि यह मुस्लिम विरोधी है। मुस्लिम लोगों को यह सरकार देश से निकालना चाहती है।

यह दिमागी जहर के प्रभाव में ज्यादातर मुस्लिम समुदाय का कमज़ोर वर्ग है। उसे देशविरोधी तत्व अपने लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। देश विरोधी तत्वों का एक बड़े वर्ग को मोदी सरकार को हिलाने और अस्थिर करने के लिए लगाता परोक्ष मदद मिल रही है, विशेषकर विदेशों से मोटी रकम मिल रही है। यही वजह है कि चाहे रामनवमी का जुलूस हो या हिंदू समुदाय का कोई और महोत्सव, मुस्लिम समुदाय का जहर भरा तत्व उबल पड़ता है। दरअसल वह वर्ग बारूद के ढेर पर बैठता है। दुष्प्रचार के चक्कर में वह गुमराह हो जाता है और फिर फसाद होने लगते हैं।

इसलिए जरूरी है कि दिमागों में बिना वजह का जहर भरते लोगों को पहचान हो, उनकी फंडिंग को नियन्त्रित किया जाए और उन्हें दंडित किया जाए। समाज के ऐसे सफेदपोश लोगों का खुलासा करना भी जरूरी है। तभी जाकर सचमुच में भाईचारा की संस्कृति विकसित हो पाएगी। मुस्लिम समुदाय के कमज़ोर और कम पढ़े-लिखे वर्गों में जागरूकता लानी होगी, ताकि वे जान सकें कि उनके दिमागों में फिजूल का जहर भरा जा रहा है।

मुस्लिम महिलाओं के लिए सम्मानजनक कानून है



भारत विरोधी तत्वों में भरा जहर है दंगों की वजह से योग ही है कि जिन दिनों रामनवमी पड़ती है, उन्हीं दिनों मुस्लिम समुदाय का रोजे चल रहे होते हैं। कुछ ऐसा ही संयोग विक्रमी संवत के श्रावण के महीने का भी होता है। उन दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में हनुमान जी की पूजा स्वरूप महावीरी झंडा निकलता है, उन्हीं दिनों मुस्लिम समुदाय का रमजान का महीना पड़ता है। इसी तरह जिस वक्त हिंदू दुर्गापूजा का त्योहार मना रहे होते हैं, उन्हीं दिनों मुसलमान समुदाय का त्योहार मोहर्म पड़ता है। चैत शुक्र पक्ष की पूर्णिमा के दिन हनुमान जी का जन्मोत्सव होता है। संयोगवश इस वक्त भी रमजान का महीना आता है। भारत में गंगा-जमुनी संस्कृति की यानी एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे के तीज-त्योहारों को साथ मनाने की बातें तो खूब की जाती हैं, लेकिन अक्सर होता यह है कि इन त्योहारों के मौके पर दोनों समुदायों के बीच झड़प और बाद में दोगे हो जाते रहे हैं।

लेकिन पहले ऐसी घटनाएं इक्का-दुक्का ही होती थीं। लेकिन हाल के दिनों में ऐसी घटनाएं बढ़ गई हैं। ऐसे में सवाल उठना स्वाभाविक है कि आखिर क्या वजह है कि गंगा-जमुनी संस्कृति वाले देश में ऐसे मौकों पर दो बढ़ गए हैं?

मध्य प्रदेश का खरगोन हो या दिल्ली की जहांगीरपुरी का इलाका, जिस तरह यहां रामनवमी और हनुमान जयंती के जुलूस पर विशेषकर मुस्लिम समुदाय की ओर से पथरबाजी हुई, झारखण्ड के कई कस्बों में रामनवमी के जुलूसों पर हमले हुए, उससे स्पष्ट है कि ऐसा अनायास नहीं हो रहा। अनायास का मतलब यह है कि किसी स्थानीय रूजशा या विवादवश जुलूस के दोरान झगड़ा बढ़ा और देखते ही देखते वह दो समुदायों का विवाद बनकर दंगा बन गया। हाल के दिनों में जिस तरह कट्टरता, विशेषकर मुस्लिम समुदाय के कुछ वर्गों में बढ़ी है, माना जा रहा है कि रामनवमी और हनुमान जयंती के जुलूसों पर हुए हमले उसी की कट्टरता की देन है। युप ऑफ

इंटरेक्युअल एंड एकेडमिशन की पांच सदस्यीय टीम ने दिल्ली के जहांगीरपुरी की फसाद की जो तथ्य खोजी रिपोर्ट जारी की है, उसके नतीजे साफ हैं। संक्षेप में इस समूह को जिया कहा जाता है। जिया का मानना है कि मस्जिदों के साथ चलने वाले मदरसों में बच्चों को पढ़ाई के साथ ही यह बताया जा रहा है कि गैर मुस्लिम काफिर हैं और उन्हें सबक सिखाया जाना चाहिए। आप मान्यता है कि महिलाएं चाहे किसी भी वर्ग की हों, वे अपनी प्राकृतिक बनावट की वजह से पुरुषों की तुलना में सहज और संवेदनशील होती हैं। लेकिन चाहे खरगोन का मामला हो या फिर जहांगीरपुरी का फसाद, वहां महिलाएं भी जुलूस पर पथर बरसातीं नजर आईं। खरगोन की एक मुस्लिम युवती के पथर बरसाते बीड़ियों तो असे तक सोशल मीडिया की सुर्खियां बने रहे। जिया की तथ्यात्मक जांच रिपोर्ट में भी सामने आया है कि जहांगीरपुरी में भी मुस्लिम समुदाय की महिलाएं पथर बरसाने में आगे रहीं।

जिया की तथ्य जांच रिपोर्ट के अनुसार नागरिकता



संशोधन अधिनियम पारित होने के बाद पूर्वी दिल्ली के जाफराबाद आदि इलाकों की सड़कों पर जो धरने और प्रदर्शन हुए, उसमें रोजाना जहांगीरपुरी से तीन-चार बर्पों में भर-भरकर मुस्लिम महिलाओं का समूह जाता रहा है। जिया ने अपनी खोजी रिपोर्ट में पाया है कि मुस्लिम महिलाओं को जाफराबाद ले जाना दरअसल उनकी कटृता की दिशा में प्रशिक्षित किए जाने का ही हिस्सा था। जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के पास भी नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ जो लंबा धरना चला, उसमें भी दिल्ली के तमाम इलाकों की मुस्लिम महिलाओं को ले जाया गया। वहाँ जो भाषणबाजी हुई, उसका लब्बोलुआब यह तथ्यहीन बात मुस्लिम समुदाय के लोगों के दिमाग में बैठाना था कि बहुसंख्यक यानी हिंदू समुदाय उसका दुर्घन है। जाहिर है कि इस तरह की तथ्यहीन बातें महिलाओं और बच्चों के दिमाग में भर दी गईं।

चाहे जहांगीरपुरी का दंगा हो या फिर कर्नाटक में हिजाब पर उठा विवाद हो, हर जगह के मामले में पीपुल्स फ्रंट ऑफ इंडिया यानी पीएफआई का हाथ सामने आ रहा है। यहाँ यह बताना जरूरी है कि पीएफआई पूर्ववर्ती संगठन सिमी का ही नया रूप है। जब सिमी ने इस्लाम के नाम पर आतंकी गतिविधियां फैलानी शुरू कीं, तो उस पर प्रतिवंध लगने शुरू हुए। उसके बाद उसने नाम बदल लिया। पीएफआई आजकल हर ऐसे आंदोलन के पीछे खड़ा हो रहा है। मुस्लिम समुदाय के लोगों को भड़काने में उसकी बड़ी भूमिका बार-बार सामने आ रही है।

मदरसा हो या फिर महिलाओं के ट्रेनिंग सेंटर या फिर कोई और जगह, हर जगह पीएफआई और टूसरे संगठन इस्लामिक कटृतावाद को फैला रहे हैं। इसकी बजह से अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के मन में लगातार जहर भरता जा रहा है। यही बजह है कि जब रामनवमी, हनुमान जयंती या फिर महावीरी झंडा का जुलूस निकलता है, इसी जहर की बजह से शांति विरोधी तत्व इन तत्वों को उकसाते हैं। और फिर दोगे भड़कना आसान हो जाता है। यह जहर नहीं तो और क्या है कि जहांगीरपुरी के दंगों के बाद वहाँ की मुस्लिम महिलाएं यह कहतीं नजर आईं कि क्या मस्जिद के सामने जुलूस के लोग चुप नहीं रह सकते। महिलाएं यहाँ तक कहतीं नजर आईं कि हमारे रोजे के बक्त वे लोग उकसाते हैं तो हम कैसे चुप रह सकते हैं। यही स्थिति मस्जिदों में चलने वाले मदरसे में पढ़ने वाले बच्चों की प्रतिक्रिया भी कुछ वैसी ही है।

केंद्र की मोदी सरकार अब तक की पहली सरकार है, जिसने अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए काफी धन खर्च किया है। अल्पसंख्यक मंत्रालय का बजट 2013-14 में तीन हजार एक सौ 30 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2022-23 में पांच हजार बीस करोड़ रुपये कर दिया गया है। अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री मुख्तार अब्बास नकवी ने लोकसभा के बीते सत्र में एक सवाल के जवाब में बताया है कि अल्पसंख्यक समुदायों की शिक्षा के लिए 2013-14 में एक हजार आठ सौ 88 करोड़ रुपये का बजट आवंटन 2022-23 में बढ़ाकर दो हजार पांच सौ 15 करोड़ रुपये किया गया है। जाहिर है कि यह सरकार

अल्पसंख्यकों के विरोध में नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश अल्पसंख्यक विशेषकर मुस्लिम समुदाय में यह बात जानबूझकर फैलाई जा रही है कि मोदी और भारतीय जनता पार्टी की सरकार मुसलमानों की विरोधी है। नागरिकता संशोधन कानून के बारे में भी योजनाबद्ध तरीके से फैलाया गया कि यह मुस्लिम विरोधी है। मुस्लिम लोगों को यह सरकार देश से निकालना चाहती है।

यह दिमागी जहर के प्रभाव में ज्यादातर मुस्लिम समुदाय का कमज़ोर वर्ग है। उसे देशविरोधी तत्व अपने लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। देश विरोधी तत्वों का एक बड़े वर्ग को मोदी सरकार को हिलाने और अस्थिर करने के लिए लगाता परोक्ष मदद मिल रही है, विशेषकर विदेशों से मोटी रकम मिल रही है। यही बजह है कि चाहे रामनवमी का जुलूस हो या हिंदू समुदाय का कोई और महोत्सव, मुस्लिम समुदाय का जहर भरा तत्व उबल पड़ता है। दरअसल वह वर्ग बारूद के देर पर बैठा है। दुष्प्रचार के चक्कर में वह गुमराह हो जाता है और फिर फसाद होने लगते हैं। इसलिए जरूरी है कि दिमागों में बिना बजह का जहर भरते लोगों की पहचान हो, उनकी फंडिंग को निर्यातित किया जाए और उन्हें दंडित किया जाए। समाज के ऐसे सफेदपेश लोगों का खुलासा करना भी जरूरी है। तभी जाकर सचमुच में भाइचारा की संस्कृति विकसित हो पाएगी। मुस्लिम समुदाय के कमज़ोर और कम पढ़े-लिखे बच्चों में जागरूकता लानी होगी, ताकि वे जान सकें कि उनके दिमागों में फिजूल का जहर भरा जा रहा है।

राज ठाकरे: अवसरवादी विकृत राजनीति का एक और चेहरा



यदि हम पीछे मुड़कर राज ठाकरे के राजनैतिक महत्वाकांक्षा भरे जीवन पर एक नजर डालेंगे तो यही पायेंगे कि बाल ठाकरे की विरासत के रूप में शिव सेना की कमान न मिल पाने के विरोध में ही 9 मार्च 2006 को कथित रूप से हिंदुत्व तथा भूमिपुत्र के सिद्धान्तों पर आधारित महाराष्ट्र नव निर्माण सेना (मनसे) महाराष्ट्र के एक क्षेत्रीय राजनैतिक दल के रूप में वजूद में आई। यह भी कहा जाता है कि उद्घव ठाकरे के साथ मतभेद तथा राज्य में चुनाव में टिकट वितरण जैसे अहम फैसलों में राज ठाकरे की अवहेलना के चलते भी मनसे गठित की गयी। परन्तु हकीकत तो यह है कि यदि बाल ठाकरे अपनी राजनैतिक विरासत अपने पुत्र उद्घव ठाकरे को सौंपने के बजाये भतीजे राज ठाकरे को सौंप देते तो यकीनन मनसे वजूद में ही न आती। बहरहाल मनसे ने राज ठाकरे के नेतृत्व में बाल ठाकरे तर्ज की आक्रामक राजनीति करनी शुरू की। शिवसेना को

कमजोर करने की कोशिश करते हुए वी एम सी, पुणे नगर निगम, ठाणे तथा नासिक नगर निगम जैसे महत्वपूर्ण स्थानों पर अपने प्रतिनिधि निर्वाचित कराये। इतना ही नहीं बल्कि 2009 के महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में मनसे ने 13 विधानसभा सीटें भी जीतीं। इसके अलावा 24 से अधिक स्थानों पर मनसे दूसरे स्थान पर भी रही।

परन्तु अब सीटें जीतने के लिहाज से धीरे धीरे मनसे का राजनैतिक जनाधार लगभग समाप्त सा हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि जो मनसे हिंदुत्व का ध्वजवाहक बनना चाहती थी उसी ने 2008 में उत्तर भारतीयों विशेषकर उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, मध्य प्रदेश और बिहारी प्रवासियों के विरुद्ध खुले आम हिंसा शुरू कर दी। मनसे कार्यकर्ताओं ने महाराष्ट्र के विभिन्न भागों में उत्तर भारतीय दुकानदारों और विक्रेताओं पर हमला किया। कई जगह सरकारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। छठ जैसे उत्तर भारतीयों के प्रमुख त्यौहार का विरोध किया जाने

लगा। इस घटना पर लोकसभा में भी काफी हँगामा हुआ था। इसी तरह 9 नवम्बर 2009 को समाजवादी पार्टी के विधायक अबू आजमी को मनसे विधायकों द्वारा उन्हें हिंदी में शपथ लेने से रोका गया। और उनसे सदन में मार पीट की गयी। महाराष्ट्र विधान सभा अध्यक्ष ने इस घटना में शामिल मनसे के चार विधायकों को चार वर्ष के लिए निलम्बित कर दिया गया था। मुम्बई और नागपुर में विधान सभा बैठक के दौरान उनके प्रवेश पर भी रोक लगा दी गई थी। अभी पिछले दिनों पूर्व महाराष्ट्र में मनसे द्वारा खड़े किये गये अजान-लाउडस्पीकर-हनुमान चालीसा विवाद के मध्य मनसे प्रमुख राज ठाकरे को कथित तौर पर कोई धमकी भरा पत्र मिला। इस पत्र के मिलने के बाद एक मनसे नेता ने कहा कि राज ठाकरे को एक धमकी भरा उर्दू में लिखा गया पत्र मिला है, उनकी जान को खतरा है। इस नेता ने चेतावनी दी है कि अगर ठाकरे को कुछ हुआ तो 'वे

महाराष्ट्र को जला देंगे। स्वयं राज ठाकरे की राजनीति का अंदाज प्रायः आक्रामक व तल्खी भरा ही रहता है। वे कई बार अपने साक्षात्कार के दौरान आपे से बाहर और वरिष्ठ पत्रकारों के प्रति अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल करते दिखाई देते हैं। अब जबसे शिवसेना ने भाजपा से अपना पुराना नाता तोड़ काग्रेस व राष्ट्रवादी काग्रेस पार्टी से मिलकर सरकार गठित की है तब ही से राज ठाकरे भाजपा के साथ अपने राजनैतिक संबंध बनाने की जुगत में लगे थे। या यूँ कहें कि भाजपा व मनसे दोनों को ही एक दूसरे से संबंध बनाने की मजबूरी दरपेश थी। परन्तु इसके लिये राज ठाकरे को अपने मराठी नहीं बल्कि हिंदुत्ववादी तेवरों में धार रखनी जरूरी थी। जो उन्होंने मस्जिदों से लाउडस्पीकर हटाने, अजान के वक्त लाउडस्पीकर पर हनुमान चालीसा पढ़ने जैसा विवाद खड़ा कर, करने की पूरी कोशिश भी की। साथ ही राज ठाकरे ने अपने नये 'हिंदुत्ववादी अवतार' को क्षेत्रीय की जगह राष्ट्रीय 'कवच' पहनाने के लिये 5 जून को अयोध्या में राम लला के दर्शन का कार्यक्रम भी घोषित कर दिया खबरों के मुताबिक मनसे ने 11 ट्रेन रैक बुक करने की योजना बनाई है ताकि अयोध्या में मनसे के कार्यकर्ता अपने नेता का स्वागत कर सकें। परन्तु उत्तर भारतीयों द्वारा राज ठाकरे का पुराना रिकार्ड अब खोल दिया गया है। बहराइच, अयोध्या से लेकर इलाहबाद और पूर्वांचल के कई जिलों में उन्हीं उत्तर भारतीयों ने राज ठाकरे का विरोध करने के लिये कमर कस ली है जिन्हें 2008 में राज ठाकरे के निदेशों पर मनसे कार्यकर्ताओं द्वारा इतना प्रताड़ित किया गया था कि लाखों लोग रास्तों में और ट्रेनों, बसों व टैक्सियों में मार खाते, लुटते, पिटते अपने घरों को लौटने के लिये मजबूर हो गए थे। राज ठाकरे के विरोध में सत्ताधारी दल भाजपा के कैसर गंज के सांसद बृजभूषण शरण सिंह जोकि भारतीय कुश्ती संघ के अध्यक्ष भी हैं, ने मोर्चा खोल दिया है। उन्होंने कहा है कि ठाकरे को अयोध्या आने देना तो दूर उन्हें उत्तर प्रदेश की सीमा में भी घुसने नहीं दिया जायेगा। और भी कई राजनेता व धर्मगुरु भी राज ठाकरे की अयोध्या यात्रा का विरोध कर रहे हैं। उनके अयोध्या आगमन से पहले ही अनेक राजनैतिक संगठन और संस्थायें विरोध में उत्तर आई हैं। अयोध्या के कई प्रमुख साधु संत व धर्मगुरु भी राज ठाकरे के प्रस्तावित अयोध्या दौरे का विरोध कर रहे हैं। राज ठाकरे के अयोध्या दौरे का विरोध करने वालों का कहना है कि उत्तर भारतीयों को अपराधी कहने वाले राज ठाकरे या तो उत्तर भारतीयों से माफी मार्गे अन्यथा अयोध्या आने का साहस न करें। इनका कहना है कि 'हम उत्तर भारतीय ही भगवान श्री राम के वंशज हैं अतः उत्तर भारतीयों का महाराष्ट्र में अपमान किया जाना भगवान श्रीराम का अपमान है। राज ठाकरे भगवान श्री राम के अपमानी हैं। लिहाजा बिना माफी मार्गे अयोध्या आने पर उत्तर भारतीय राज ठाकरे का जमकर विरोध करेंगे। इस पूरे प्रकरण में आश्वर्य की बात तो यह है कि जहाँ एक भाजपा सांसद खुलकर राज ठाकरे के अयोध्या दौरे का विरोध कर रहे हैं वहाँ इन्हीं विरोध स्वरों के बीच अयोध्या से भाजपा के ही सांसद लल्लू सिंह, राज ठाकरे के समर्थन में आ गये हैं। सांसद लल्लू सिंह का कहना है कि जो भी प्रभु श्रीराम की शरण में आना चाहता है उसका अयोध्या में स्वागत है। सांसद लल्लू सिंह ने यह भी कहा कि - 'राज



ठाकरे पर हनुमान जी की कृपा हुई है इसलिए वह अयोध्या में प्रभु श्रीराम जी की शरण में आ रहे हैं। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें सद्गुद्धि मिले जिससे कि वह स्वयं के व महाराष्ट्र के कल्याण के लिए प्रधानमंत्री मोदी जी की शरण में भी जाएं। उधर 10 जून को राज ठाकरे के भतीजे आदित्य ठाकरे भी अयोध्या आ रहे हैं। अयोध्या में दोनों 'ठाकरे' के दौरे को लेकर पोस्टर लगाये जा रहे हैं। इसके चलते अयोध्या शिवसेना और महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के टकराव का केंद्र बनता जा

रहा है। बहरहाल राज ठाकरे के रूप में अवसरवादी व विकृत राजनीति का एक और चेहरा तो जरूर उभर रहा है परन्तु इन सब के बीच उत्तर भारतीयों को यह जानना भी बेहद जरूरी है कि उत्तर भारतीयों के दम पर अपनी सरकार बनाने वाली व हिंदी भाषा का प्रसार करने की कोशिशों में लगी भारतीय जनता पार्टी हिंदी भाषा व उत्तर भारतीयों का विरोध करने वाले राज ठाकरे के प्रति नीतिगत व सैद्धांतिक रूप से आखिर क्या विचार रखती है।

बॉलीवुड को ग्रस्ता दक्षिण भारतीय फिल्म उद्योग

बीते हुए समय और बॉलीवुड के हिंदी ऑफिस से के बदलते हुए नजारिये को देखते हैं तो यह पाते हैं कि आज साउथ के डायरेक्टर और उनकी फिल्में देखना वे काफी पसंद कर रहे हैं। काफी समय से बॉलीवुड में साउथ के लोग अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रहे हैं। बॉलीवुड में साउथ के लोगों की प्रतिभा केवल ऐक्टिंग में ही नहीं बल्कि एडिटिंग, टेक्निकल फील्ड और डायरेक्शन में भी देखी गयी है। लेकिन अब पिछले कुछ समय से नौर्थ इंडिया की हिंदी बोलने वाली जनता पर साउथ की फिल्मों का खुमार बढ़ता जा रहा है। साल 2017 में रिलीज हुई निर्देशक एसएस राजामौली की फिल्म बाहुबली इस लिस्ट में टॉप पर है। प्रभास और अनुष्का शेट्टी की इस फिल्म ने इंडियन बॉक्स ऑफिस से कुल 1351 करोड़ रुपये कमाए थे। ये आज तक की सबसे बड़ी इंडियन ग्रोसर फिल्म है। हालांकि साल 2015 में आई पहली कड़ी से भी दर्शकों से खूब प्यार मिला। प्रभास और अनुष्का शेट्टी की इस फिल्म ने थिएटर से 482 करोड़ रुपये जुटाए थे।

अगर हम बात रजनीकांत और अक्षय कुमार स्टारर फिल्म 2.0 की बात करें तो वो इस लिस्ट में दूसरे नंबर पर है। शंकर के निर्देशन में बनी साल 2018 में सिनेमाघर पहुंची इस फिल्म ने देश के सिनेमाघरों से कुल 507.50 करोड़ रुपये कमाए थे। अल्लू अर्जुन और रश्मिका मंदाना स्टारर निर्देशक सुकुमार की हालिया रिलीज फिल्म पुष्पा बंपर कमाई में बिजी है। अभी तक ये फिल्म देश भर के सिनेमाघरों से कुल 400 करोड़



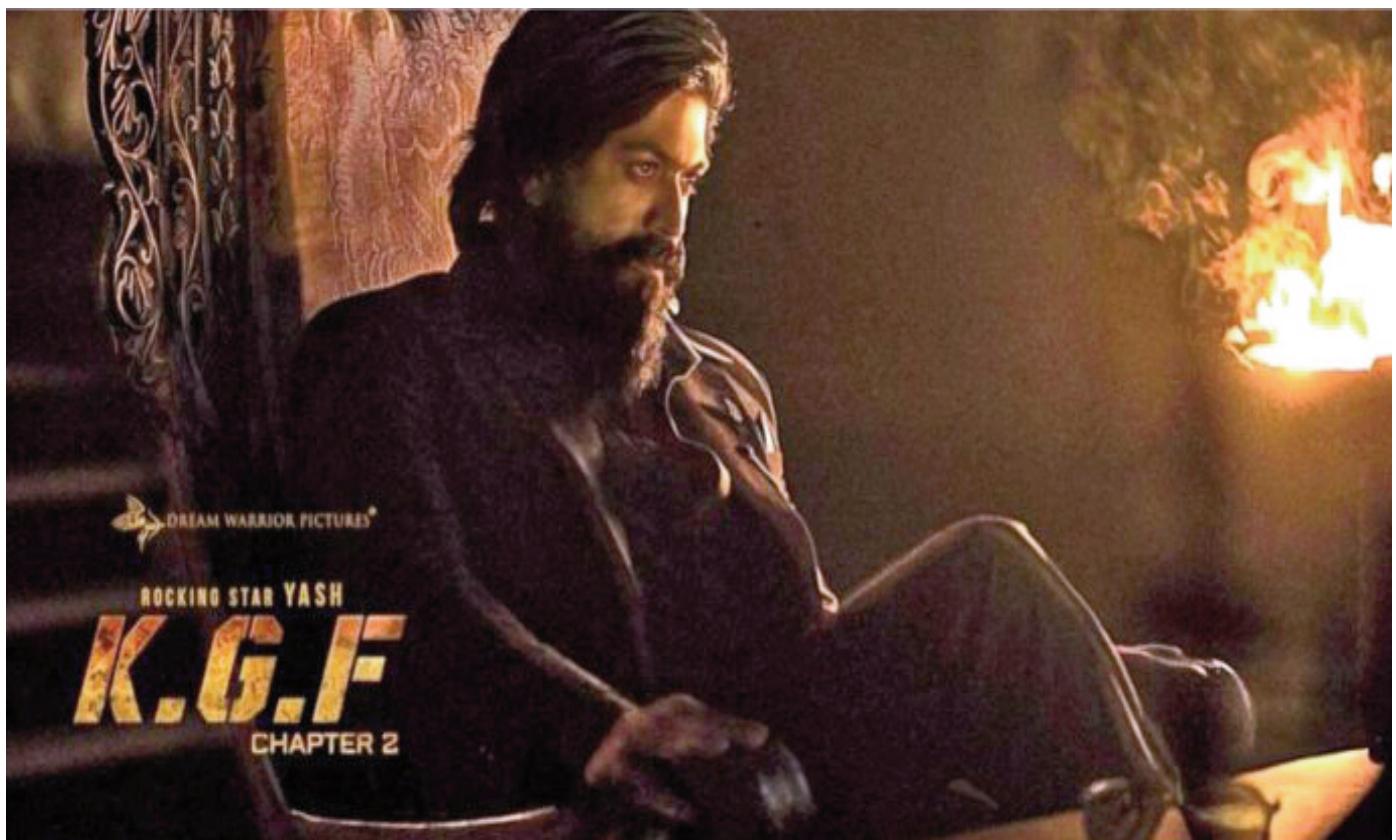
रुपये बटोर चुकी है। बात अकेले पुष्पा की नहीं है, बात है अच्छे कंटेंट, बेहतर अदाकारी और अच्छी स्क्रिप्ट के साथ तरीके से फिल्म को बनाने की। दिमाग के सारे धोड़े ढौँड़ा लीजिए और यात करके बताइए कि अखिरी बार बॉलीवुड की बायोपिक या रीमेक को छोड़कर आपने कौन सी अच्छी हिंदी फिल्म देखी है। जब अल्लू अर्जुन की फिल्म पुष्पा हिंदी में रिलीज हुई तो उसके साथ ही

रणवीर सिंह की फिल्म 83 भी रिलीज हुई थी।

हिंदी में 83 को पुष्पा के मुकाबले बहुत ज्यादा स्क्रीन मिले थे लेकिन अगर कमाई के आकड़ों को देखें तो पुष्पा ने कम स्क्रीन पर होने के बावजूद 83 से ज्यादा कमाई कर ली। और फिर फिल्म निर्देशक विवेक अग्निहोत्री की फिल्म द कश्मीर फाइल्स की बात करें तो 25 करोड़ की लागत से बनी इस मूवी ने लोगों पर एक जादू सा बिखेर दिया और लोग सिनेमाघरों में इस मूवी को बड़े पर्दे देखने के लिए मरे जा रहे थे। टिकट खरीदने के लिए घटों लाइनों में लगकर इतजार करना भी मंजूर था। द कश्मीर फाइल्स फिल्म ना ही ज्यादा स्क्रीन्ज पर रिलीज हुई थी और ना ही इसका किसी ने प्रमोशन किया पर फिर भी वर्ल्ड वाइड बॉक्स ऑफिस पर 331 करोड़ रुपये की कमाई कर ली। इसने इन सारे मिथकों को मिटाकर ब्लैक बोर्ड पर बॉक्स ऑफिस के आंकड़े नए सिरे से लिखने शुरू कर दिए। यह सब संभव हुआ फिल्म के अच्छे निर्देशन से।

अब बारी उस फिल्म की है जिसमें इन दोनों का समावेश है। अंग्रेजों के खिलाफ छिड़ी जंग में दक्षिण को दो रण बांकुरों की कहानी है, रौद्रम रणम रुधिरम यानी फिल्म आरआरआर। फिल्म आरआरआर की कहानी 1920 के दोर की है। उत्तर से छिड़ी आजादी की लड़ाई दक्षिण में आग लगा चुकी है। आरआरआर ने तो द कश्मीर फाइल्स का रेकॉर्ड भी तोड़ दिया ज्ञ 24 दिनों में देशभर में 751 करोड़ रुपये की कमाई की। और इसके बाद केजीएफ ज्ञ चैप्टर 2 रिलीज के एक हफ्ते बाद भी हिंदी फिल्म देखने वालों पर अपना जादू बिखेर रही है।





एक क्षेत्रीय भाषा की फिल्म होने के नाते, फिल्म हिंदी बाजारों में शानदार प्रदर्शन कर रही है। पहले सप्ताह में 250 करोड़ रुपये का जार्दुई आंकड़ा पार कर लिया। और अगर बात हम साल 2018 में रिलीज हुई फिल्म केजीएफ चैप्टर 1 की बात करें तो कुल वर्ल्ड वाइड कलेक्शन 237 करोड़ रुपये का रहा था।

नॉर्थ इंडियन जनता का बॉलीवुड के पुराने मसाले से ऊबने की वजह यह भी है कि साउथ की फिल्मों के धड़ाधड़ हिंदी रीमेक बनाए जा रहे हैं और उन्हें साउथ के डायरेक्टर ही बना रहे हैं। इसका एक सबसे अच्छा उदाहरण शाहिद कपूर की फिल्म कबीर सिंह है। यह फिल्म तेलुगु फिल्म अर्जुन रेड्डी का हिंदी रीमेक थी और इसका डायरेक्शन भी मूल फिल्म के डायरेक्टर संदीप रेड्डी वांगा ने किया। यह फिल्म इतनी पसंद की गई कि यह शाहिद कपूर के करियर की अब तक की सबसे बड़ी हिट मूवी बन गई। बॉलीवुड में साउथ फिल्मों के रीमेक बनाना यह दिखाता है कि साउथ इंडियन डायरेक्टरों के कन्टेंट के बिना बॉलीवुड की फिल्मों अध्युरी है और इन्हें साउथ-नॉर्थ के टैग देना बंद कर देना चाहिए, सिर्फ इंडियन फिल्म इंडस्ट्री कहा जाना चाहिए। इससे इंडियन सिनेमा आगे बढ़ेगा। साउथ इंडियन मूवीज छिन्नू धर्म की भावनाओं और हिन्दू धर्म के रीति द्वारा रिवाजों से जुड़ी हाती है ना कि बॉलीवुड मूवी की तरह है, जिसमें हिन्दू धर्म की भावनाओं और रीति-रिवाजों का मजाक बनाया जाता है और तो और ये तो धर्म की राजनीति से देश के नागरिकों में असमानता पैदा करती है। आजतक की रिपोर्टिंग में बताया है कि उन्होंने शाहरुख खान से एक सवाल किया था कि क्या कभी शाहरुख खान, आमिर खान, और सलमान खान, एक साथ किसी फिल्म में दिखेंगे? उस सवाल के जवाब में शाहरुख खान ने कहा था कि तीनों को साइन करने में घर के बर्तन बिक जाएंगे। इन जैसे एक्टरों के घमंड और बदले समय ने बॉलीवुड के मुंह पर



तमाचा मार ही दिया। जिन साउथ की फिल्मों का एक दशक पहले मजाक बनाया जाता था, आज वही साउथ की फिल्मों कमाल कर रही हैं, और उनके अदाकार अगली पर्कि में भारतीय सिनेमा जगत का प्रतिनिधित्व कर

रहे हैं। इन फिल्मों की कामयाबी ने दिखाया कि सितारे नहीं बल्कि अब फिल्मों की कहानियों, इनके फिल्मांकन और इनकी तकनीकी सुरुचि और समृद्धि ही बॉक्स ऑफिस पर कमाल करेगी।

जीवन की रक्षा के लिए पृथ्वी संरक्षण जरूरी



पृथ्वी दिवस पूरे विश्व में 22 अप्रैल को मनाया जाता है। इस वर्ष पृथ्वी दिवस की थीम इन्वेस्ट इन अवर प्लैनेट है, जो हमें हरित समृद्धि से समृद्ध जीवन बनाने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह थीम संदेश देती है कि हमारे स्वास्थ्य, हमारे परिवारों, हमारी आजीविका और हमारी धरती को एक साथ संरक्षित करने का समय आ गया है। पृथ्वी दिवस आधुनिक पर्यावरण आंदोलन की वर्षांठ का प्रतीक है, जो पहली बार सन् 1970 में मनाया गया था। इसका उद्देश्य लोगों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील

एवं पृथ्वी के संरक्षण के लिये जागरूक करना है। पिछले कुछ समय से कोरोना महामारी एवं महासंकट ने न केवल इसानों के जीवन को खतरे में डाला है बल्कि पृथ्वी, प्रकृति एवं पर्यावरण पर भी उसके घातक असर डाला है। दुनिया में पृथ्वी के विनाश, प्रकृति प्रदूषण एवं कोरोना के जैविक संकट को लेकर काफी चर्चा हो रही है। आज विश्वभर में हर जगह प्रकृति का दोहन एवं शोषण जारी है। जिसके कारण पृथ्वी पर अक्सर उत्तरी ध्रुव की ठोस बर्फ का कई किलोमीटर तक पिघलना, सूर्य की पराबैगनी

किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकने वाली ओजोन परत में छेद होना, भयंकर तूफान, सुनामी और भी कई प्राकृतिक आपदाओं का होना आदि ज्वलंत समस्याएँ विकराल होती जा रही हैं, जिसके लिए मनुष्य ही जिम्मेदार हैं। ग्लोबल वार्मिंग के रूप में जो आज हमारे सामने हैं। ये आपदाएँ पृथ्वी पर ऐसे ही होती रहीं तो वह दिन दूर नहीं जब पृथ्वी से जीव-जन्तु व वनस्पति का अस्तिव ही समाप्त हो जाएगा। जीव-जन्तु अधे हो जाएगे। लोगों की त्वचा झुलसने लगेगी और कैंसर रोगियों

की संख्या बढ़ जाएगी। समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटवर्ती इलाके चपेट में आ जाएगे। कोरोना महामारी जैसी व्याधियां रह-रहकर जीवन संकट का कारण बनती रहेगी।

पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति उपेक्षा का ही परिणाम है कि हमारे द्वारा कहीं फैविट्रियों का गन्दा जल हमारे पाने के पानी में मिलाया जा रहा है तो कहीं गडियों से निकलता धुआं हमारे जीवन में जहर घोल रहा है और धूम फिर कर यह हमारी पृथ्वी को दूषित बनाता है। जिस पृथ्वी को हम मां का दर्जा देते हैं उसे हम खुद अपने ही हाथों दूषित करने में कैसे लगे रहते हैं? आज जलवायु परिवर्तन पृथ्वी के लिए सबसे बड़ा संकट बन गया है। अगर पृथ्वी के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लग जाए तो मानव जीवन कैसे सुरक्षित एवं संरक्षित रहेगा? पृथ्वी है तो सारे तत्व हैं, इसलिये पृथ्वी अनमोल तत्व है। इसी पर आकाश है, जल, अग्नि, और हवा है। इन सबके मेल से प्रकृति की संरचना सुन्दर एवं जीवनमय होती है। अपने-अपने स्वार्थ के लिए पृथ्वी पर अत्याचार रोकना होगा और कार्बन उत्सर्जन में कटौती पर ध्यान केंद्रित करना होगा। अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से औद्योगिक क्रांति पर नियन्त्रण करना होगा, क्योंकि उन्हीं के कारण कार्बन उत्सर्जन और दूसरी तरह के प्रदूषण में बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान परिषेक्ष्य में कई प्रजाति के जीव-जंतु, प्राकृतिक स्रोत एवं वनस्पति विलुप्त हो रहे हैं, जिससे पृथ्वी असंतुलित हो रही है। विलुप्त होते जीव-जंतु और वनस्पति की रक्षा के लिये विश्व-समुदाय को जागरूक करने के लिये ही इस दिवस को मनाया जाता है। आज चिन्तन का विषय न तो रूस-यूक्रेन युद्ध है और न मानव अधिकार, न कोई विश्व की

पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति उपेक्षा का ही परिणाम है कि हमारे द्वारा कहीं फैविट्रियों का गन्दा जल हमारे पीने के पानी में मिलाया जा रहा है तो कहीं गडियों से निकलता धुआं हमारे जीवन में जहर घोल रहा है और धूम फिर कर यह हमारी पृथ्वी को दूषित बनाता है। जिस पृथ्वी को हम मां का दर्जा देते हैं उसे हम खुद अपने ही हाथों दूषित करने में कैसे लगे रहते हैं? आज जलवायु परिवर्तन पृथ्वी के लिए सबसे बड़ा संकट बन गया है। अगर पृथ्वी के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लग जाए तो मानव जीवन कैसे सुरक्षित एवं संरक्षित रहेगा? पृथ्वी है तो सारे तत्व हैं, इसलिये पृथ्वी अनमोल तत्व है। इसी पर आकाश है,

जल, अग्नि, और हवा है। इन सबके मेल से प्रकृति की संरचना सुन्दर एवं जीवनमय होती है। अपने-अपने स्वार्थ के लिए पृथ्वी पर आकाश है,

अत्याचार रोकना होगा और कार्बन उत्सर्जन में कटौती पर ध्यान केंद्रित करना होगा। अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से औद्योगिक क्रांति पर नियन्त्रण करना होगा, क्योंकि उन्हीं के कारण कार्बन उत्सर्जन और दूसरी तरह के प्रदूषण में बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान परिषेक्ष्य में कई प्रजाति के जीव-जंतु, प्राकृतिक स्रोत एवं वनस्पति विलुप्त हो रहे हैं, जिससे पृथ्वी असंतुलित हो रही है। विलुप्त होते जीव-जंतु और वनस्पति की रक्षा के लिये विश्व-समुदाय को जागरूक करने के लिये ही इस दिवस को मनाया जाता है। आज चिन्तन का विषय न तो रूस-

यूक्रेन युद्ध है और न मानव अधिकार, न कोई विश्व की





राजनैतिक घटना और न ही किसी देश की रक्षा का मामला है। चिन्तन एवं चिन्ता का एक ही मामला है लगातार विकराल एवं भीषण आकार ले रही गर्मी, सिकुड़ रहे जलस्रोत, विनाश की ओर धकेली जा रही पृथ्वी एवं प्रकृति के विनाश के प्रयास। बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता प्रदूषण, नष्ट होता पर्यावरण, दूषित गैसों से छिद्रित होती ओजोन की ढाल, प्रकृति एवं पर्यावरण का अत्यधिक दोहन- ये सब पृथ्वी एवं पृथ्वीवासियों के लिए सबसे बड़े खतरे हैं और इन खतरों का अहसास करना ही विश्व पृथ्वी दिवस का ध्येय है। प्रतिवर्ष धरती का तापमान बढ़ रहा है। आबादी बढ़ रही है, जमीन छोटी पड़ रही है। हर चीज की उपलब्धता कम हो रही है। औक्सीजन की कमी हो रही है। साथ ही साथ हमारा सुविधावादी नजरिया एवं जीवनशैली पृथ्वी और उसके पर्यावरण एवं प्रकृति के लिये एक गंभीर खतरा बन कर प्रस्तुत हो रहा है।

जल, जंगल और जमीन इन तीन तत्वों से पृथ्वी और प्रकृति का निर्माण होता है। यदि यह तत्व न हों तो पृथ्वी और प्रकृति इन तीन तत्वों के बिना अधूरी है। विश्व में ज्यादातर समृद्ध देश वही माने जाते हैं जहाँ इन तीनों तत्वों का बाहुल्य है। बात अगर इन मूलभूत तत्व या संसाधनों की उपलब्धता तक सीमित नहीं है। आधुनिकीकरण के इस दौर में जब इन संसाधनों का अंधाधुच्च दोहन हो रहा है तो ये तत्व भी खतरे में पड़ गए हैं। अनेक शहर पानी की कमी से परेशान हैं। आप ही बताइये कि कहाँ खो गया वह आदमी जो स्वयं को कटवाकर भी वृक्षों को कटने से रोकता था? गोचरभूमि का एक टुकड़ा भी किसी को हथियाने नहीं देता था। जिसके लिये जल की एक बूँद भी जीवन जितनी कीमती थी। कल्त्तव्यानों में कटती गायों की

निरीह आहें जिसे बेचैन कर देती थी। जो वन्य पशु-पक्षियों को खदेड़कर अपनी बसियों बनाने का बौना स्वार्थ नहीं पालता था। अब वही मनुष्य अपने स्वार्थ एवं सुविधावाद के लिये सही तरीके से प्रकृति का संरक्षण न कर पा रहा है और उसके कारण बार-बार प्राकृतिक आपदाएं कहर बरपा रही है। रेगिस्तान में बाढ़ की बात अजीब है, लेकिन हमने राजस्थान में अनेक शहरों में बाढ़ की विकराल स्थिति को देखा है। जब मनुष्य पृथ्वी का संरक्षण नहीं कर पा रहा तो पृथ्वी भी अपना गुस्सा कई प्राकृतिक आपदाओं के रूप में दिखा रही है। वह दिन दूर नहीं होगा, जब हमें शुद्ध पानी, शुद्ध हवा, उपजाऊ भूमि, शुद्ध वातावरण एवं शुद्ध वनस्पतियां नहीं मिल सकेंगी। इन सबके बिना हमारा जीवन जीना मुश्किल हो जायेगा।

मनुष्यों की सुविधा के लिए बनाई गयी पॉलीथीन पृथ्वी के लिये सबसे बड़ा सिरदर्द बन गई है। इसके नष्ट न होने के कारण भूमि की उर्वरक क्षमता खत्म हो रही है। इनको जलाने से निकलने वाला धुआं ओजोन परत को भी नुकसान पहुंचाता है जो ग्लोबल वार्मिंग का बड़ा कारण है। देश में प्रतिवर्ष लाखों पशु-पक्षी पॉलीथीन के कचरे से मर रहे हैं। इससे लोगों में कई प्रकार की बीमारियां फैल रही हैं। चौंक प्रकृति मनुष्य की हर जरूरत को पूरा करती है, इसलिए यह जिम्मेदारी हरेक व्यक्ति की है कि वह प्रकृति की रक्षा के लिए अपनी ओर से भी कुछ प्रयास करे। हमें पानी का इस्तेमाल कम से कम करना चाहिए और पानी की अधिक से अधिक बचत करनी चाहिए। हमें वर्षा के जल को पुनः उपयोग में लाने वाली प्रणाली को विकसित करना होगा। हमें बिजली की बाबरी को भी

रोकना होगा अन्यथा वह दिन दूर नहीं है जब हम अंधेरे में ही अपना जीवन-यापन करने को मजबूर हो जायेंगे। हमें कागज के उपयोग को सीमित करना होगा, क्योंकि कागज पेड़ों की लकड़ी से बनता है जिसके लिए हमें बड़ी संख्या में पेड़ काटने पड़ते हैं। आजकल भूमि भी जहरीली होती जा रही है जिससे उसमें उगने वाली वनस्पतियों में विषाक्तता बढ़ती जा रही है। हमारी सुविधावादी जीवनशैली से निकलने वाली विषैली गैसों के एक अणु में ओजोन के लाख अणुओं को नष्ट करने की क्षमता है। कैसे रोकेगे कार्बन डाइऑक्साइड और जहरीली मिथेन गैस के उत्सर्जन को। गरमी के मौसम में पहाड़ी क्षेत्रों में जंगल धधक उठते हैं। उत्तराखण्ड के जंगल जलते रहे हैं।

सवाल है कि जब ऐसी घटनाओं से हम हर साल दो-चार होते हैं तो भविष्य के लिए कोई सबक क्यों नहीं लेते? पिछले कुछ वर्षों से बार-बार सूखे का सामना कर रहे महाराष्ट्र के विदर्भ और उत्तर प्रदेश-मध्य प्रदेश के बुंदेलखण्ड में पीने के पानी की समस्या बढ़ गई है। इन इलाकों के कई जलाशयों में पानी का स्तर क्षमता का 10 फीसदी ही रह गया है, जिससे कुछ फसलें संकटग्रस्त हो गई हैं। आवश्यक है-मानव स्वभाव का प्रकृति के साथ तादात्य स्थापित हो। सहज रिश्ता कायम हो। जीवनशैली में बदलाव आये। हर क्षेत्र में संयम की सीमा बने। हमारे दिमागों में भी जो स्वार्थ एवं सुविधावाद का शैतान बैठा हुआ है, उस पर अंकुश लगे। सुख एवं सुविधावाद के प्रदूषण के अणु कितने विनाशकरी होते हैं, सहज ही विनाश का रूप ले रही पृथ्वी की विनाशलीला को देखकर कहा जा सकता है।

विस्थापन, अभाव और विकास की प्रक्रिया



कुछ भी हो, यह याद रखा जा सकता है कि कुछ लोग विस्थापन के मुदे पर यह नजरिया रखते हैं कि यह तो इतिहास से चला आ रहा है। इस नजरिए से वे विस्थापितों के मसले पर मानवाधिकार कार्यकर्ताओं का विरोध दरकिनार करने की कोशिश करते हैं। लेकिन तथ्य यह है कि समस्या को इसतिए नहीं टाला जा सकता क्योंकि यह अब पुरानी हो चुकी है। हमें याद रखना चाहिए कि कई अन्य क्षेत्रों जैसे लिंग समानता, लोकतंत्र आदि में भी जागरूकता हाल ही के वर्षों में बढ़ी है। विस्थापन और अभाव को पैदा करने वाला विकास इन दिनों मानवाधिकार का मुद्दा माना जा रहा है। न केवल अध्ययन बल्कि जमीनी अनुभव से भी यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि देश के विकास के नाम पर लोगों को उनकी आजीविका से वंचित किया जा रहा है, वे हाशिए पर धकेले जा रहे हैं और उनकी विष्णनता बढ़ती ही जा रही

है। यह मुद्दा पश्चिम बंगाल के सिंगूर व नंदीग्राम, ओडीशा के नियामगिरि और काशीपुर, उत्तरप्रदेश व हरियाणा में हाइवे के खिलाफ जनांदोलन, मैंगलोर व हरियाणा में सेज के खिलाफ आंदोलन व ऐसे ही अन्य जन संघर्षों के चलते राष्ट्रीय स्तर पर उभरा है। ऐसे आंदोलनों ने कानूनों, निर्णय प्रक्रिया व ऐसी ही अन्य गलत प्रक्रियाओं पर सवाल खड़े किए हैं जिनकी वजह से लोगों को विस्थापित होना पड़ा या बेहद लचर पुनर्वास झेलना पड़ा। ऐसे तमाम उपाय उन लोगों के अधिकारों के खिलाफ जाते हैं जो ऐसी परियोजनाओं की वजह से विस्थापित होते हैं या अभाव झेलते हैं, अथवा अपनी आजीविका से वंचित कर दिए जाते हैं। इस विफलता का सबसे प्रमुख कारण विकास का निर्धारित करने वाली विचारधारा है। इसके चलते मानवीय विकास की जगह आर्थिक विकास को ज्यादा तवज्जो दी जाती है। अध्ययन बताते हैं कि

विस्थापन तथा आजीविका से बेदखली व विकास की वर्तमान सोच का ही नतीजा है कि ताकतवर और भी ज्यादा ताकतवर बनते जाते हैं तथा कमजोर पहले से कहीं ज्यादा अभावग्रस्त होकर और भी हाशिए पर चले जाते हैं। यही वजह है कि विस्थापन के अध्ययन में विकास के प्रतिमान केंद्र में आ जाते हैं। विकास प्रतिमानों से संबद्ध पूवानुमानों का परीक्षण जरूर होना चाहिए और अगर ये सही साबित हो जो समस्याओं के निदान के उपाय ढूँढ़े जाने चाहिए।

इस नतीजे तक पहुंचने के लिए हमें भारत में विस्थापन की प्रक्रिया को उसके ऐतिहासिक परिणीति में रखकर समझना चाहिए। इस पेपर में स्वतंत्रता से पहले विस्थापन की स्थिति तथा 1947 के बाद राष्ट्रीय विकास के संदर्भ में लोगों को उनकी आजीविका से वंचित करने के संदर्भ में ध्यान दिया गया है। साथ ही इस पेपर में यह चर्चा भी

होगी कि भू-उपयोग कितने तरह के तथा किस हद तक किए गए हैं तथा विस्थापित व परियोजना प्रभावित व्यक्तियों पर इसका कितना असर पड़ा है।

1. विस्थापन तथा अभाव

इस पेपर की शुरूआत संविधान के अनुच्छेद 11 में उल्लिखित जीने के अधिकार के बिंदु से होती है। देश की सर्वोच्च अदालत ने इस अधिकार की व्याख्या करते हुए इसे हर व्यक्ति के लिए सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार करार दिया है। इसमें आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएं तथा हित (वासवानी 1992-158) शामिल हैं। अध्ययन से पता चलता है कि लोगों को विस्थापित करने वाली अधिकांश परियोजनाओं में इस कर्तव्य को पूरी तरह भूता दिया गया है जिसका नतीजा परियोजना प्रभावित लोगों की बदहाली के तौर पर सामने आता है। विस्थापन और अभाव को पैदा करने वाला विकास को मानवाधिकार का मुद्दा बनाने के विषय पर बोले जाते समय हमें यह बात जोड़नी चाहिए कि हम विकास का औद्योगिकरण की जरूरत पर सवाल नहीं खड़े कर रहे। आजाद भारत को इन दोनों की ही जरूरत है व्योकि उपनिवेश-काल में देश के उद्योग-धंधे चौपट हो चुके हैं और समूचा उप-महाद्वीप बदहाली की ओर धकेला जा चुका है। इसलिए अगर आजादी बाद की सरकारों ने विकास के लिए निवेश नहीं किया होता तो वे देश को असफलता की गर्त में झोंक देतीं। सवाल तो यह है कि विकास का पैमाना किस पर आधारित हो। ऐसे में सवाल धूमि, जल, ऊर्जा, खनिज और वित्तीय संसाधनों के अत्यधिक इस्तेमाल पर किया ही जाना चाहिए। पश्चिमी देशों में यह संभव हो सकता है व्योकि इसके लिए उन्हें अपने उपनिवेश वाले देशों की लूट-खस्तोट पर निर्भर रहना है। उनके विकास में श्रमिकों का शोषण अंतर्निहित है। यूरोप ने भी अपनी अतिशेष आबादी को अमेरिका, आस्ट्रेलिया, भारत सरीखे देशों में भेजा था। आबादी की अधिकता में जमीन का अत्यधिक दोहन संभव नहीं हो सकता, खासकर ग्रामीण इलाकों में जमीन का अधिग्रहण मुश्किल हो जाता है। कुल मिलाकर ज्यादा ध्यान आर्थिक विकास पर ही रहा है। इसकी तुलना में सामाजिक क्षेत्रों मसलन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण व साफ-सफाई पर निवेश बेहद कम रहा है। इसी का नतीजा रहा है कि विकास के सर्वाधिक फायदे शहरी मध्यमवर्ग व ग्रामीण उच्चवर्गीय तबके को मिले जिन्होंने इन सुविधाओं तक अपनी पहुंच सुनिश्चित की। (कुरियन 1997: 136-37)

पलायन, आपदा तथा संघर्ष के नतीजे में अंतरिक विस्थापन

यह पेपर विकास परियोजनाओं से विस्थापित लोगों व परियोजना प्रभावित व्यक्तियों पर ही सारा ध्यान केंद्रित करेगा, जबकि अन्य स्वैच्छिक पलायन की वजह से होने वाले स्वैच्छिक विस्थापन को इसमें शामिल नहीं करेगा जो बेहतर आर्थिक हालत की उम्मीद में किए जाते हैं। इसके अलावा जबरन विस्थापन के अन्य प्रकार भी हैं जिन्हें अंतरिक विस्थापित व्यक्ति (आईडीपी) कहा जाता है, यानी ऐसे लोग जो किसी तरह की आपदा, संघर्ष या विकास परियोजना की वजह से विस्थापित होते हैं लेकिन देश की सरहद में ही रहते हैं। वहीं देश की सीमा को लाघने वाले रिफ्यूजी कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर ऐसे लोग जो 2002 के मुसलमान विरोधी गुजरात दंगों

के दौरान राज्य से विस्थापन कर देश के दूसरे हिस्सों में चले गए। ऐसे लोग आंतरिक विस्थापित व्यक्तियों की ही श्रेणी में आएंगे, भले ही इन्हें नेपाल जाने वाले भूटानी शरणार्थियों या भारत आने वाले बांग्लादेशी शरणार्थियों की तुलना में ज्यादा यात्रा करनी पड़ी हो। हमारे देश का आकार ही इसे समझाने के लिए काफी है।

भूटानी लोगों के दो सौ किलोमीटर से भी कम दूरी तय करनी पड़ी शरणार्थियों का दर्जा पाने के लिए, वहीं गुजरात से 1200 किलोमीटर का यात्रा कर उत्तरप्रदेश पहुंचे मुसलमानों को जिन्हें आंतरिक विस्थापित व्यक्ति ही माना गया।

आईडीपी की पहली श्रेणी संघर्ष से संबद्ध व्यक्तियों की होती है। एक अनुमान के मुताबिक धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्षों के चलते दुनिया भर में 50 लाख आईडीपी शरणार्थी शिविरों में रहने को मजबूर हैं। इसमें हर साल बीस लाख और आईडीपी जुड़ जाते हैं (कदीम, 2005)। वहीं भारत में धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्ष की वजह से आईडीपी होने वाले लोगों की सटीक संख्या का पता लगाना बेहद मुश्किल है क्योंकि इनमें से अधिकांश लोग अपने नाते-शितेदारों के बहां शरण ले लेते हैं। केवल उन्हीं लोगों की गिनती हो पाती है जो राहत शिविरों में जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के मुताबिक 1999 में भारत में 507,000 लोग संघर्ष की वजह से आईडीपी की श्रेणी में थे (मजूमदार 2002:102)। भारत में बीते तीन दशकों में धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्षों की वजह से 30 लाख से भी ज्यादा लोग आईडीपी की श्रेणी में आ गए। इनमें 1985 के जातीय दंगों में 50,000 आईडीपी, गुजरात में 2002 के सांप्रदायिक दंगों में 100,000 आईडीपी, 1980 के दशक में कश्मीर के सीमावर्ती गांवों से 500,000 आईडीपी, कश्मीर घाटी से 350,000 कश्मीरी पडित, 1984 के सिख दंगों के दौरान दिल्ली-कानपुर के बीच तथा 1989 के हिंदू-मुस्लिम दंगों व 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद की घटनाओं में 200,000 आईडीपी शामिल हैं (दास 2005: 122-134)।

देश का उत्तर-पूर्वी हिस्सा बीते दो दशकों से जातीय संघर्ष झेल रहा है। असम में बाहरियों के खिलाफ जारी आंदोलन में 1979 से 85 के बीच 137,000 लोग विस्थापित किए जा चुके हैं। पश्चिमी असम में 1993 में हुए बोडो स्वायत्तशासी परिषद (बीएसी) के समझौते में सीमाओं का निर्धारण साफ तौर पर नहीं हो पाया था। असम सरकार ने कई सौ गांवों को बीएसी में शामिल करने से यह कहते हुए मना कर दिया था कि उनमें बोडो बहुमत नहीं है। इसके चलते ज्यादातर बनानेह की कोशिश में 1993 में बंगाली मुस्लिमों पर, 1995 में बंगाली हिंदुओं पर तथा 1996 में संथालों पर हमले शुरू हो गए। इसका नतीजा हुआ 350,000 और आईडीपी। 1980 में मेघालय के शिलांग में हुए अदिवासी-बंगाली संघर्ष के नतीजे में 25-30,000 लोग आईडीपी की श्रेणी में आ गए। इसी तरह त्रिपुरा में 1980 में हुए संघर्ष में 1400 बंगाली व 280 अदिवासी मारे गए जबकि 190,000 लोग विस्थापित कर दिए गए। मणिपुर में कुकी-पैतेर तथा नागा-कुकी संघर्ष के नतीजे में 1990 में 10,000 घर जला डाले गए, 2,000 लोग मारे गए व 50,000 से ज्यादा लोग विस्थापित हो गए। मिजोरम में 30,000 से भी ज्यादा रियांग (ब्रू) अदिवासी बेदखल कर दिए गए हैं (भौमिक 2005: 150-

165)। असम के करबी आंगलोंग जिलों तथा एनसी पहाड़ियों में हुए सांप्रदायिक झड़पों में 2003 से 100,000 लोग विस्थापित हो चुके हैं (मैगातूथाजे 2008: 60-61)।

आईडीपी की अगली श्रेणी उन लोगों की है जो प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदाओं का शिकार होते हैं। इनमें भूकंप, बाढ़, सूखा, भू-स्खलन व औद्योगिक हादसे शामिल हैं। ऐसे नियमित हादसों के अलावा भारत व दक्षिण एशिया मरुस्थलीकरण व पर्यावरण विनाश की प्रक्रिया से भी गुजर रहे हैं। इनका असर तकाल महसूस नहीं किया जा सकता या फिर भूकंप सरीखी एक ही घटना से पता नहीं चल सकता, लेकिन यह होता जरूर है। (दासगुप्ता 2007: 30-33)। कई ऐसे हादसे जो प्राकृतिक कह जाते हैं, वस्तुतः मानवनिर्मित होते हैं। यानी ऐसे हादसे जो मानवीय दखल की वजह से होने वाले पर्यावरणीय क्षति के नतीजे में होते हैं। ऐसे हादसों में हम जुलाई 2005 में मुंबई में आई बाढ़ व कोयना भूकंप जैसी घटनाओं को शामिल कर सकते हैं। बाढ़ की बढ़ती त्रासदी, सूखा और लगातार विकराल हो रहे भू-स्खलन, मरुस्थलीकरण व पर्यावरणीय विनाश की वजह से आईडीपी की संख्या बेतहाशा बढ़ती ही जा रही है (बंदोपाध्याय 2007:5)। उदाहरण के तौर पर सरकारी आंकड़ों में यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 1953 की बाढ़ में कुल 524 लोगों की जान गई थी, जबकि इस दौरा 244.8 लाख हैक्टेयर जमीन प्रभावित हुई थी। इसी तरह 1960 के दशक के मध्य में बाढ़ से मौतों की संख्या 1,000 का आंकड़ा पार कर गई थी। वर्ष 1985 में बाढ़ की वजह से देश की 590.9 लाख हैक्टेयर जमीन प्रभावित हुई थी, जबकि मौतों का आंकड़ा बढ़ कर 40,593 तक पहुंच गया था। 1998 में यह आंकड़ा 58,459 था जिसमें 687.2 लाख हैक्टेयर जमीन प्रभावित हुई, वहीं 2002 में 224.4 लाख हैक्टेयर जमीन ढूबने के साथ मौत का आंकड़ा 26,247 का था (प्रसाद 2005)।

विस्थापन के खिलाफ ऐसा ही एक सर्वाधिक जाना-माना आंदोलन है पुणे में मुलशी-पेटा के 1920 में टाटा कंपनी और ब्रिटिशों के सहयोग से पनविजली परियोजना के लिए बनाए जा रहे बांध के खिलाफ छोड़ा गया आंदोलन। जिन किसानों की जमीन इस बांध की वजह से ढूब में आने वाली थी उन्होंने अपने विस्थापन के खिलाफ बगावत कर दी, लेकिन वे उन औपनिवेशिक ताकतों के हाथों खोदें दिए गए जो उद्योगपतियों की मदद कर रहे थे। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने इस संघर्ष को आजादी के लिए जारी लड़ाई के एक हिस्से के तौर पर मान्यता दी और इसे ब्रिटिश शासकों के खिलाफ लोगों की बहादुरी माना आपदा से जुड़े दस्तावेजों के मुताबिक दुनिया भर में इसकी वजह से होने वाले आईडीपी की संख्या 500,000 है। कुछ वर्षों में यह इससे भी ज्यादा होती है। उदाहरण के तौर पर 2001 में गुजरात के भूकंप और 2005 में कश्मीर में आए भूकंप में 20-30,000 लोगों की जानें गई और हर रात्य में 200,000 लोग विस्थापित हुए। इसी 4 तरह 2004 की सुनामी में 300,000 लोग मारे गए और 500,000 लोग अपने घरों से बेघर हो गए। बीते कुछ वर्षों में 500,000 लोगों के प्रति वर्ष विस्थापन की संख्या काफी नियमित सी रही है (दास 2005:112-113)। इन सबके अलावा हर साल बाढ़ की वजह से 10 लाख लोग अस्थायी तौर पर विस्थापित

होते हैं। सूखे, भू-स्खलन तथा मरुस्थलीकरण के प्रभावितों की संख्या इससे भी कहीं ज्यादा होती है। आम तौर पर आपदा प्रभावित आईडीपी की पूछ-परख तुलनात्मक तौर पर बेहतर होती है। आपदा की नियमितता को देखते हुए कई संस्थानों ने इसके विस्थापितों की देखभाल संबंधी दक्षता सीख ली है, मसलन, ट्राम सेंटर में देखभाल, सामुदायिक सहयोग, निवास व अन्य मदद। साथ ही अर्थिक मदद का बहाव भी अन्य की तुलना में बेहतर है। संघर्ष व आपदा प्रभावित आईडीपी को तत्काल मदद मिल जाती है। कई संगठन उनके लिए राहत की व्यवस्था कर देते हैं या इसके लिए उनके नेतृत्व से चर्चा करते हैं। और इनमें से अधिकांश बाद में उन्हें भूल भी जाते हैं।

विकास की वजह से होने वाले आईडीपी

अगर हम विकास की वजह से आंतरिक विस्थापित लोगों (आईडीपी) की बात करें तो स्थिति और बदतर दिखाई देती है। ऐसे लोगों की तीन श्रेणियां हैं। पहली श्रेणी में प्रक्रिया की वजह से विस्थापित होने वाले लोग आते हैं। प्रमुख अर्थिक बदलाव तथा नई तकनीकी ने लोगों को उनके सहारे से दूर कर दिया। उदाहरण के तौर पर 1970 में तटीय उथले या कम पानी वाले इलाकों में गहरे पानी के ट्रॉलरों को लाने की मंजूरी से हजारों मछुआरों को उनकी आजीविका से दूर कर दिया गया (लेकेंजेंडर 1980)। गैरवनीकरण के चलते लाखों आदिवासियों को अपनी रोजी-रोटी से हाथ धोना पड़ा (पांडे 1998: 2-3)। खड़ के जूतों और चप्पलों ने दलित जूता बनाने वालों का रोजगार छीन लिया (त्रिवेदी 1977) वैचाकरण के एक अहम अंग मरीनीकरण की वजह से खदान मजदूरों खासकर महिलाओं को बड़ी संख्या में बेरोजगार कर दिया (बानुमध्य 2002-00)। इस प्रक्रिया से विस्थापित होने वाले किसी भी व्यक्ति को विकास का पीड़ित नहीं माना गया। इनमें से अधिकांश दलित, आदिवासी तथा अन्य कमज़ोर सामुदायिक तबकों से थे। दूसरी श्रेणी में ऐसे लोग आते हैं जिनकी विकास परियोजनाओं ने जिनकी जमीन और संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें उनकी आजीविका से दूर कर दिया। इनमें से कुछ विस्थापित लोग (डीपी) थे तथा अन्य परियोजना प्रभावित लोग (पीएपी) की श्रेणी में आते हैं। कुछ परियोजनाओं ने लोगों को उनकी निजी जमीन से दूर कर बेरोजगार कर दिया वहीं कुछ को उनकी समूहिक जमीन साझा संसाधनों से विहीन कर बेरोजगार की श्रेणी में ला दिया। कई मामलों में तो दोनों ही तरह की जमीनों को छीना गया है। कई अन्य योजनाओं के चलते लोगों को उनकी आजीविका तक पहुंच बनाने से रोका गया है। उदाहरण के तौर पर बंदरगाह परियोजनाएं, जिनकी वजह से मछुआरों को समुद्र में जाने और मछली पकड़ने के अधिकार से वैचित्र रखा जाता है (फर्नांडीस तथा आसिफ 1997: 109-111)। इसी तरह अप्रत्यक्ष तौर पर विस्थापित व्यक्ति भी हैं जो पर्यावरणीय प्रभावों की वजह से अपनी रिहाई से बाहर निकलने के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं। मसलन थर्मल पावर प्लाट, अल्युमिनियम प्लाट आदि जिनकी वजह से भारी मात्रा में कचरा या व्यर्थ सामग्री का निश्पादन होता है। इसके अलावा जमीन की उर्वरता, पानी, स्वास्थ्य आदि पर इस कचरे के प्रभाव से भी लोगों का विस्थापन होता है (गंगुली ठुकराल 1999:11)। ऐसे लाखों लोगों की

तलाश की जा सकती है अगर उन्हें उनकी पहचान के लिए लिए किसी सटीक तरीके का इस्तेमाल किया जाए। वास्तव में ऐसे लोगों में बहुत ही कम की पहचान हो सकी है (भराली 2008:00)। कुल मिलाकर यह लगभग 5 असंभव है कि हम अप्रत्यक्ष तौर पर विस्थापित लोगों की पहचान और गिनती कर सकें। यही वजह है कि विस्थापन पर होने वाले ज्यादातर अध्ययनों से उन्हें बाहर ही रखा जाता है।

ऐसे में यहां हम केवल उन लोगों की बात करेंगे या उन्हीं के संदर्भ में बात करेंगे जो विकास परियोजनाओं के लिए भूमि व आजीविका के संसाधनों पर कब्जा कर लिए जाने की वजह से प्रभावित हुए हैं। इससे जबरन व स्वैच्छिक पलायन, युद्ध से प्रभावित विस्थापित व्यक्ति, प्राकृतिक या मानवनिर्मित हादसों से प्रभावित व्यक्ति, परियोजना प्रभावित व्यक्ति तथा अप्रत्यक्ष विस्थापित व्यक्ति बाहर होंगे। इस पांचवीं के जरिए यह साबित करने की कोशिश करेंगे कि विकास की वजह से होने वाले विस्थापन लोगों के एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने का प्रमुख कारण जरूर है, लेकिन यही एकमात्र कारण नहीं है। इसकी खासियत यह है कि यह योजनाबद्ध होता है जबकि दूसरे जबरन पलायन या आपदा अथवा संघर्ष की वजह से पलायन आपातकालीन होते हैं। चूंकि विकास की वजह से होने वाले विस्थापन योजनाबद्ध होते हैं, ऐसे में यह निश्चित तौर पर संभव है कि परियोजना से जुड़े आला अधिकारी परियोजना प्रभावितों के पुनर्वास से इसके नकारात्मक प्रभावों को रोकने के उपाय करें। लेकिन बेहद कम मामलों में ही ऐसा हो पाता है। वास्तविकता तो यह है कि विकास परियोजनाओं की वजह से होने वाले आईडीपी की संख्या उनसे ज्यादा है जो दूसरे तरह के विस्थापितों की श्रेणी में आते हैं।

दूसरी बात, अधिकांश अध्ययन आजादी के बाद के दौर तक ही सीमित रहे हैं। जबकि इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि गुप्त काल में, तीसरी से 6वीं सदी तथा मध्य युग में बांधे तथा कई तकालीन परियोजनाओं से विस्थापन तथा पलायन की घटनाएं हुई थीं। हालांकि इनका नकारात्मक प्रभाव इसलिए ज्यादा नहीं हो पाया क्योंकि उस दौर में जमीन काफी ज्यादा थी और आबादी कम। यह कालोनियल युग में खतरे की श्रेणी में आया और वर्तमान योजनाबद्ध विकास के दौर में यह खतरा और भी बढ़ गया (मनकोडी 1989: 140-143)। कुछ भी हो, यह याद रखा जा सकता है कि कुछ लोग विस्थापन के मुद्दे पर यह नजरिया रखते हैं कि यह तो इतिहास से चला आ रहा है। इस नजरिए से वे विस्थापितों के मसले पर मानवाधिकार कार्यकालों का विरोध दरकिनार करने की कोशिश करते हैं। लेकिन तथ्य यह है कि समस्या को इसलिए नहीं टाला जा सकता क्योंकि यह अब पुरानी हो चुकी है। हमें याद रखना चाहिए कि कई अन्य क्षेत्रों जैसे लिंग समानता, लोकतंत्र आदि में भी जागरूकता हाल ही के वर्षों में बढ़ी है। हम निश्चित ही महिलाओं के दमन, सामंतवाद या ऐसे ही अन्य अन्यायपूर्ण परंपराओं को इसलिए जारी नहीं रख सकते क्योंकि ये पुराने हैं।

2. विस्थापन, अलगाव और विकास प्रतिमान

आजादी के बाद होने वाले विस्थापन की जड़ें दरअसल आजादी के फहले से जारी प्रक्रिया से जुड़ी हुई हैं, खासतौर पर भूमि अधिग्रहण कानून 1894 (एलएक्यू)

से। यह राज्य को अधिकार देता है कि वह लोगों से बिना पूछे उन्हें उनकी जमीन से विस्थापित कर दे। लेकिन इस कानून के लागू होने के सौ साल बाद भी आज तक यह परिभाशित नहीं हो पाया है कि जिस जनहित के नाम पर लोगों को बेदखल किया जाता है वह जनहित आखिर है क्या। यही वजह है कि विस्थापन की प्रक्रिया आज भी उसी तरह बदस्तर जारी है जिस तरह 1947 से पहले के दौर में होती थी, इसका कारण यह है कि आज भी विकास के प्रतिमानों में कोई बदलाव नहीं आया है। तथ्य तो यह है कि योजनाबद्ध विकास के साथ ही कमज़ोर तबके के लोगों का और भी गरीब होने व हाशिए पर जाने की प्रक्रिया ने जोर पकड़ लिया है। इसके बावजूद विस्थापित लोगों तथा परियोजना प्रभावित लोगों की वास्तविक संख्या संबंधी कोई भी अधिकारिक आंकड़ा आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इस भाग में हम विकास प्रतिमान को नए नजरिए से देखने की कोशिश करेंगे।

उपनिवेश युग में विस्थापन व अभाव

आज विस्थापन का मुद्दा मानवाधिकार का एक बड़ा मसला बन चुका है। इसका कारण यह है कि उपनिवेशकाल में ही इसका अनुपात खतरनाक स्तर को छू चुका था और 1947 के बाद तो इसमें और भी तेजी आ गई। यही वजह है कि यह भाग उपनिवेश युग से शुरू किया जा रहा है। उपनिवेश युग का मुख्य लक्ष्य यह था कि भारतीय अर्थिक व्यवस्था को ब्रिटिश औद्योगिक जरूरतों के लिहाज से बदल दिया जाए। इसके लिए पहला कदम यह था कि अपने उपनिवेश (भारत) को उद्योगविहीन कर दे और ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति के अंतिम उत्पाद को बेचने के लिए इसे बाजार के तौर पर इस्तेमाल करें (फर्नांडीज तथा रायचौधरी 1998)। इसी तरह दूसरा कदम था कानूनी उपाय करना, जिसके तहत भूमि तथा वन कानून बनाए गए। इन कानूनों का मुख्य लक्ष्य जमीनों का ब्रिटिश अधिग्रहण वाले वनीकरण तथा खनन, यातायात व अन्य परियोजनाओं के लिए जमीनों का ट्रांसफर था। इसकी शुरूआत स्थायी बंदोबस्त 1793 से हुई जो असम भूमि कानून 1838, कलकत्ता कानून, 1824 तथा ऐसे ही अन्य कानून बनाए गए जिनका अंत भूमि अधिग्रहण कानून 1894 (एलएक्यू) में हुआ जो आज तक लागू है (उपाध्याय तथा रमन 1998)।

ये सारे बदलाव निजी जमीन या संपत्ति को उचित मुआवजा देकर सरकार के आधिपत्य में लाने का अधिकार (एमिनेंट डोमेन) के सिद्धांत पर आधारित हैं। आस्ट्रेलिया ने भूमि संबंधों के इस नजरिए को इस तरह देखा जा सकता है कि ऐसी जमीन टेरा नलियस (किसी की जमीन नहीं) कहलाती है। यानी श्वेतों की औपनिवेशिक कालोनियों, आस्ट्रेलिया व अमेरिका में जमीन का यह सिद्धांत काम करता है कि जो जमीन किसी के निजी नाम पर नहीं है वह किसी की जमीन नहीं है और ऐसे में उसपर कोई भी कब्जा कर सकता है। 1992 में आस्ट्रेलिया के न्यायालय ने इस सिद्धांत के तहत जमीन पर आधिपत्य करने को गैरकानूनी घोषित कर दिया (ब्रेनन 1995:16)। लेकिन यह एमिनेंट डोमेन के ब्रिटिश नजरिए के साथ भारतीय भूमि कानूनों का आधार बदस्तर बना रहा। इसका पहला पक्ष तो यही है कि ऐसी तमाम जमीन, जैवि विविधता सरकारी है जिसका कोई निजी पट्टा ना हो। दूसरा यह कि केवल सरकार को यह

अधिकार है कि वह जनहित को परिभाषित करे। भूमि अधिग्रहण कानून तो इसी पर आधारित है लेकिन जनहित जिसके नाम पर सरकार लोगों को उसकी जमीन से बेदखल कर देती है, उसकी परिभाषा आज तक नहीं दी जा सकी है (रामनाथन 2008: 134-135)। इसके बावजूद इन कानूनों को लागू करते समय औपनिवेशिक युग में जैव विविधता तथा सामुदायिक संसाधनों पर राज्य के एकाधिकार के सिद्धांत का ही पालन किया गया। औपनिवेशिक दखल का नतीजा परोक्ष तौर पर लाखों लोगों के विस्थापन तथा अलगाव के तौर पर सामने आया। इसमें से अधिकांश प्रक्रिया आधारित थे। इनसे विस्थापित हुए लोगों की संख्या का कोई अता-पता नहीं है। दादाभाई नैरोजी (1998) ने यह संख्या साढ़े तीन करोड़ आंकी थी। यह जरूर पता है कि प्रक्रियागत विस्थापन के चलते बड़े पैमाने पर विस्थापित होने वालों में भूमिहीन दलित सर्वाधिक थे। सामुदायिक प्राकृतिक संसाधन आधारित आदिवासी तथा अन्य सेवारत समुदाय सस्ते मजदूरों में बदल गए। बदलावों से अभावप्रस्त और गरीब हुए अधिकांश लोगों ने हार मान ली और उनमें से कई भारतीय, अफ्रीकी, वेस्टइंडीज, प्रशांत व दक्षिण पूर्व एशिया की ब्रिटिश औपनिवेशिक कालानीयों में वनीकरण, खनन आदि परियोजनाओं में बंधुआ मजदूरों के तौर पर भेजे गए जहाँ उन्हें दासों की सी हालत में काम करने पर मजबूर होना पड़ा (सेन 1979: 8-12)। हालांकि कई

पुरजोर विरोध भी किया। इसीलिए इतिहास में आदिवासियों और दलितों के कई संघर्ष दर्ज हैं। विस्थापन के खिलाफ ऐसा ही एक सर्वाधिक जाना-माना आंदोलन है पुणे में मुलशी-पेटा के 1920 में टाटा कंपनी और ब्रिटिशों के सहयोग से पनबिजली परियोजना के लिए बनाए जा रहे बांध के खिलाफ छोड़ा गया आंदोलन। जिन किसानों की जमीन इस बांध की बजह से डूब में आने वाली थी उन्होंने अपने विस्थापन के खिलाफ बगावत कर दी, लेकिन वे उन औपनिवेशिक ताकतों के हाथों खदेड़ दिए गए जो उद्योगपतियों की मदद कर रहे थे। स्वतंत्रता संग्राम सेनानीयों ने इस संघर्ष को आजादी के लिए जारी लड़ाई के एक हिस्से के तौर पर मान्यता दी और इसे ब्रिटिश शासकों के खिलाफ लोगों की बहादुरी माना (भुस्कुटे 1997: 170-172)। विस्थापन, अभाव और विकास की प्रक्रिया वाल्टर फर्नांडीस

विस्थापन और विकास प्रतिमान

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 1950 में, यानी आजादी बाद के पहले दशक में, योजनकारों ने सारे अहम निर्णय ह्याराष्ट्र निर्माणङ्क के सिद्धांत के आधार पर लिए। इसमें यह माना गया कि कुछ लोगों को विकास की कीमत जरूर चुकानी होगी लेकिन यह इस मायने में लाभप्रद भी होगा कि विकास के फायदे सभी तक पहुंच जाएंगे। जब विकास के फायदे बहुसंख्यक तक पहुंचने में नाकाम रहे

तो यह नजरिया बदलकर ह्याराष्ट्रीय विकासङ्क का हो गया। इसमें आर्थिक तरक्की इस आशा के साथ प्राथमिकता की श्रेणी में रखा गया कि इसके जरिए सभी नागरिकों तक विकास के लाभ पहुंच जाएंगे। बाद में उदारीकरण के दौर में महज ह्याविकासङ्क शब्द का ही इस्तेमाल किया गया। विस्थापन के खिलाफ हुए मुलशी-पेटा आंदोलन को समर्थन देने के बावजूद स्वतंत्रता सेनानीयों ने औपनिवेशिक कानूनी व्यवस्था को बदस्तूर जारी रखा, हालांकि इस बार उनके इरादे भिन्न थे। अंग्रेजों के शासनकाल में भूमि घोषित तौर पर उनके फायदे के लिए अधिग्रहीत की जाती थी, जबकि 1947 में आजादी के बाद भारत ने खुद को एक कल्याणकारी राज्य घोषित किया हुआ था। इसमें लाभ या फायदा एक घोषित कारण नहीं था लेकिन लगभग सभी विकास परियोजनाओं आर्थिक क्षमता को ही प्राथमिकता दी गई। यह निश्चित तौर पर हैरतअंगेज कारण नहीं था, क्योंकि अधिकांश भारतीय नेता विदेशों में पढ़े-लिखे थे, उनका पूरा ध्यान विदेशी तकनीकी के विकास से प्रेरित था और इस बात से पूरी तरह प्रभावित थे कि भारत पश्चिमी देशों के मुकाबले बहुत पिछड़ा हुआ था। जवाहरलाल नेहरू सरीखे कुछ नेताओं को पश्चिमी देशों के विकास के पीछे मौजूद इस बुनियादी कारण का पता था कि वे अपने यहाँ तथा अपने उपनिवेशों में मजदूरों का जमकर शोषण करते हैं। लेकिन नेहरू तथा पीसी महलनोबिस सरीखे लोग जिन्हें देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था के पीछे का मुख्य दिमाग माना जाता



है, ने भारत की समस्याओं के निदान के लिए तकनीक को ही मुख्य समाधान के तौर पर लिया। ह्याभारत एक खोजल (1946 : 64-65) में नेहरू इस बात की जरूरत पर जोर दिया था कि औद्योगिकीकरण एक लोकतांत्रिक ढांचे के तहत ही किया जाए। इसमें साम्यवादी तानाशाही और पूँजीवादी शोषण के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। ऐसा करने के लिए भारत को उसके अधिविश्वासों और रूढ़िवादी से बाहर निकलना होगा, परंपराएं बदलनी होंगी और खुद को आधुनिक बनाना होगा। इसी विचारधारा ने उन्हें बड़े बांधों और उद्योगों को आधुनिक भारत के तीर्थ घोषित करने के लिए प्रेरित किया (फर्नांडीज 1993)।

आजाद भारत के नेताओं ने सामाजिक ताने-बाने की कभी भी उपेक्षा नहीं की बल्कि उनकी सोच यह रही कि सार्वजनिक क्षेत्र के जरिए अर्थिक उन्नति को नई ऊँचाईयों पर लाकर वे सामाजिक बराबरी कर पाएंगे। वे इस बात से भी प्रभावित रहे कि राज्य द्वारा प्रेरित तकनीकी विकास के जरिए वे बेरोजगारी, गरीबी और अशिक्षा की समस्या से निजात पा जाएंगे तथा ऐसे विकास का फायदा हर भारतीय तक पहुंच जाएगा। उन्हें इस बात का अंदाजा तो था कि इस दौरान कई समस्याओं का सामना होगा वहीं वे इस बात का भरोसा भी था कि समस्याएं अस्थाई होंगी और अंततः इससे सभी का भला ही होगा (व्यासुलू 1998)। बहुत ही कम लोग, जैसे महात्मा गांधी (1948:26) ने महसूस किया था कि उपनिवेशवादी देश अपने उपनिवेशों का शोषण कर अपीर बनते जा रहे हैं। इसी बजह से महात्मा गांधी ने स्वतंत्र भारत को पश्चिमी राह का अंधानुकरण करने से आगाह किया था। उन्होंने औद्योगिकीकरण का नहीं उद्योगवाद का विरोध किया था। वे ऐसे विकास के विरोधी थे जो उस तकनीक और उपभोग की राह पर चलता था जो बहुमत की पहुंच से बहुत दूर था। इंलैंड सरीखे छोटे से देश ने दुनिया के आध देशों को महज इसलिए वर्चित बना रखा था ताकि उसके नागरिक अपीरों की तरह जी सकें।

इसीलिए उन्हें यह डर था कि अगर भारत जैसे बड़े देश भी उसी राह पर चल पड़े तो यह प्रक्रिया और भी ज्यादा दूर तक जाएगी, और ज्यादा देश वर्चित हो जाएगे। उनके अनुयायियों का यह मत था कि चूंकि भारत के उपनिवेश नहीं हैं इसलिए यहां मध्यम वर्ग अपनी आरामदेह सुविधाओं के लिए गरीबों को उनके हक्कों से वर्चित कर देगा।

इसके उलट निजी क्षेत्र की यह राय था कि मिश्रित अर्थव्यवस्था लागू की जाएग, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र को केवल बड़ी परियोजनाओं में ही निवेश करना है, तथा मुनाफा कमाने वाले उपभोक्ता क्षेत्र को निजी उद्यमों के लिए छोड़ दिया जाता है। उनके विचार 1945 में टाटा और बिल्ला जैसे निजी औद्योगिक घरानों द्वारा तैयार किए गए बांबे प्लान के समय नजर आए। इसमें साफ कर दिया गया कि चूंकि भारतीय निजी क्षेत्र में बड़ी परियोजनाओं जैसे स्टील और ऊर्जा में निवेश करने की क्षमता नहीं है, इसलिए इन क्षेत्रों में सरकार करदाताओं के पैसे से निर्माण करे तथा मुनाफा कमाने वाले उपभोक्ता उद्योग को निजी क्षेत्रों के लिए छोड़ दिया जाए। उन्होंने विकास को महत आर्थिक वृद्धि और मुनाफ के तौर पर ही देखा। इसके

सामाजिक घटक की ओर ध्यान नहीं के बराबर दिया गया जिसमें यह देखा जाना चाहिए कि कौन कीमत चुकाता है और किसका फायदा होता है (व्यासुलू 1998)। दूसरी

पंच-वर्षीय योजना 1956-61 ने इसी नजरिए को अपनाया और कहा गया कि यह कवायद समानता लाने की है (योजना आयोग 1956:236)। तीसरी योजना (योजना आयोग 1961: अप्रैल ऐप्रैल नंबर 7) में कहा गया, भारत के पास एक परंपरावादी समाज है जिसकी जड़ें हजारों वर्ष पुराने इतिहास में गड़ी हैं। ऐसे में सामाजिक परंपराओं और संस्थाओं में दूरगमी बदलाव बेहद ज़रूरी हैं, जिनकी सुरुआत हो चुकी है, ताकि तकनीकी विकास पर आधारित ऐसा समाज बनाया जा सके जो समान अवसर प्रदान कर सके तथा सामाजिक न्याय की जगह अर्थिक तरबकी को प्राथमिकता मिल सके। इसी विचारधारा पर चलते हुए भारत के पश्चिम से पैसे तथा अत्याधुनिक तकनीकी उधार में ली। इस ह्याविदेशी मददकू के जरिए पूँजीवाद आधारित ऊँचांगत परियोजनाओं को लागू करने की कवायद की गई।

अधिकांश निर्णयकारी नेताओं की यही राय थी, क्योंकि उनमें से ज्यादातर ने खुद को अंतर्राष्ट्रीय मान लिया था और उपनिवेशवादी मूल्यों को मान्यता दे चुके थे। औपनिवेशिक तथा आजादी के बाद के दौर में अगर संदर्भ का कोई केंद्र बिंदु था तो वह पश्चिम ही था। लेकिन औपनिवेशिक दौर की प्राथमिकता यह थी कि भारतीय औद्योगिक परिवृश्य को पश्चिमी औद्योगिक क्रांति की जरूरतों को पूरा करने के लिए बदल दिया जाए। 1947 के बाद भारत की पूरी कोशिश आधुनिकीकरण की थी ताकि वह पश्चिम की टक्कर कर सके। यहां इस तथ्य की पूरी तरह अवहेलना कर दी गई थी कि भारत जाति और लिंग आधारित असमानता बाला समाज है जिसमें विकास के फायदे देश के हर नागरिक तक तब तक नहीं पहुंच सकते जब तक समान समाज की रचना के लिए ज़रूरी कदम नहीं उठाए जाते। जैसा कि डॉ बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में संविधान को प्रस्तुत करते समय कहा था, यह देश को राजनीतिक लोकतंत्र ज़रूर दे देगा लेकिन आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र तो राष्ट्रीय विकास के जरिए ही लाया जा सकता है। लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि आधुनिकीकरण को बिना असमान समाज बदले अमल में लाया गया। इस व्यवस्था में असमानताओं को बढ़ाना अंतिमिहित है क्योंकि अधीनस्थ वर्ग तकनीकी के साथ चलने के लिए तैयार नहीं हुआ है, वहीं आधुनिक समाज के लिए बदलाव हेतु कई अन्य ज़रूरतों भी अपेक्षित हैं। इस विकास के फायदों तक पहुंच बनाने के लिए औपचारिक शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण के अलावा मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक तैयारी की भी ज़रूरत है। लेकिन इस बात को सुनिश्चित करने की बेहद कम कोशिश की गई कि अब तक उपेक्षित समुदायों, वर्ग की शिक्षा व अन्य सेवाओं तक पहुंच बन सकें। स्कूल, अस्पताल व ऐसे ही अन्य संस्थान बनाए गए तथा पिछड़े वर्गों को आरक्षण भी दे दिया गया। ऐसे संस्थानों में सुविधाएं तो मूढ़या करा दी गई लेकिन इन्हें हासिल करना तब तक संभव नहीं था जब तक सभी की इन तक पहुंच सुनिश्चित न की जाए। ऐसे ज़रूरी कदम उठाए बिना आधुनिक बनाने के लिए की गई कवायदों से गरीब और उपेक्षित वर्ग को और बदहाली की ओर धकेला जाएगा तथा असमानता को बढ़ावा मिलेगा (डिसूज 1986: 26)।

यह विरोधाभास भारतीय विकास के प्रतिमानों की पूर्वी एशियाई देशों मसलन, दक्षिण व उत्तर कोरिया, चीन, ताइवान तथा मलेशिया से तुलना करने पर समझाया जा सकता है। इन देशों ने भी भारी उद्योगों में काफी निवेश किया, लेकिन इसी के साथ सामाजिक क्षेत्र में भी अच्छा-खासा निवेश किया गया। उदाहरण के तौर पर भारत में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए मुफ्त शिक्षा तथा सार्वजनिक क्षेत्र में उन लोगों के लिए नौकरी की व्यवस्था है जो स्कूली शिक्षा पा चुके हैं। जो स्कूलों तक पहुंच पाने में नाकाम रहे हों उन्हें नौकरी से भी वंचित ही रखा जाता है। वहीं 1970 से लागू मलेशियाई भूमिपुत्र (धरती के बेटे) नीति के तहत मलय लोगों का ध्यान रखा जाता है जो देश की 60 फीसदी आबादी है, लेकिन आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में पिछड़ी हुई है। इसमें नियम है कि निजी और सार्वजनिक हर क्षेत्र में मलय लोगों को नौकरी का एक निश्चित हिस्सा दिया जाएगा। जबकि भारत में केवल सार्वजनिक क्षेत्र में ही आरक्षण लागू है। इसके अलावा मलेशिया ने सभी निवासियों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ-सफाई आदि के लिए भारी निवेश किया था, ना कि महज अल्पसंख्यकों के लिए जैसा कि भारत में होता है। मलेशिया में भूमिपुत्र नीति के जरिए यह कीशिश की जाती है कि देश की बहुसंख्यक आबादी को सुविधाएं दी जा सकें, लेकिन भारत में संस्थान और सेवाएं स्थापित ज़रूर की जाती हैं पर उन तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम नहीं उठाए जाते। इसी तरह अन्य देशों मसलन, दोनों कोरिया, इंडोनेशिया तथा चीन ने भी शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ-सफाई तथा पोषण के क्षेत्र में भारी योगदान दिया। चीन में भी बहुसंख्यक आबादी को दयनीय स्थिति से उबरने में मदद दी गई। वहीं अन्य देशों में अधिकांश आबादी के लिए ऊर्जा की व्यवस्था की गई (कर्नल फेरर 1998)।

भारत में आजादी के समय साक्षरता की दर बेहद कम थी। अधिकांश आदिवासी व दलित निरक्षर थे। खासकर इनमें महिलाओं की संख्या ज्यादा थी, उन्हें छोड़कर प्रभावी वर्ग की थीं जहां जिन्हें शिक्षा पाने की सुविधा थी। यह बात का संकेत था कि सामाजिक बदलाव के अभाव में आधुनिकीकरण के तमाम फायदे मध्यम तथा उच्च वर्ग को ही मिलेंगे ना कि गरीब को। इसके चलते अपीर और गरीब के बीच की खाई और भी ज्यादा बढ़ेगी। इसके बावजूद आजतक राष्ट्रीय विकास की इस सोच में कोई भी बदलाव नहीं आया है। यहां तक कि उदारीकरण के दौर के बाद निजी क्षेत्र यह नहीं चाहता कि ढांचागत क्षेत्र के विकास का काम सार्वजनिक क्षेत्र के हाथों में रहे, क्योंकि अब यह क्षेत्र भी लाभ देने वाला बन चुका है। लाभ का लालच बढ़ता जा रहा है और सामाजिक घटक कहीं पीछे छूटे जा रहे हैं। इसी का नतीजा यह है कि इस पर कोई सवाल नहीं पूछे जा रहे हैं कि कौन कीमत चुका रहा है और कौन कौन मुनाफा कमा रहा है (कुरियन 1997: 134-145)। भरोसे मंद आंकड़ों का अभाव विकास के वर्तमान प्रतिमान में आर्थिक विकास के लिए सामाजिक दायित्वों को दरकिनार करना साफ तौर पर देखा जा सकता है। यह आजादी के बाद विस्थापन तथा अभाव का एक मुख्य कारक भी रहा है। इसका पहला मुख्य घटक डांपी/पाएपी लोगों तथा उनके पुनर्वास संबंधी वास्तविक संख्या से संबंधित भरोसेमंद आंकड़ों का अभाव रहा है। जैसा कि उपर कहा जा चुका है, 1950 में, यानी आजादी बाद के पहले दशक में, योजनकारों ने सारे अहम निर्णय हाराष्ट्र निर्माणहू के सिद्धांत के आधार पर लिए। इसमें यह माना गया कि कुछ लोगों को विकास

की कीमत जरूर चुकानी होगी लेकिन यह इस मायने में लाभप्रद भी होगा कि विकास के फायदे सभी तक पहुंच जाएंगे। जब विकास के फायदे बहुसंख्यक तक पहुंचने में नाकाम रहे तो यह नजरिया बदलकर ह्यायास्त्रीय विकासह का हो गया। इसमें आर्थिक तरकी इस आशा के साथ प्राथमिकता की श्रेणी में रखा गया कि इसके जरिए सभी नागरिकों तक विकास के लाभ पहुंच जाएंगे। बाद में उदाहरण के दौर में महज ह्यायिकासह शब्द का ही इस्तेमाल किया गया। असम तथा पश्चिम बंगाल में वनसार्वजनिक संसाधन भूमि पूरी तरह आवंटित नहीं हुई है। इस वजह से नका कुल सार्वजनिक राजस्व भूमि में शामिल किया गया है : स्रोत : फनर्डीज 2008 ए: विस्थापित तथा पुनर्वसित किए लोगों की संख्या के आंकड़ों का अधाव यह दर्शाता है कि सामाजिक परिषेक्ष्य का हमारा नजरिया कितना कमज़ोर है। इस कमी की वजह से डीपी लोगों की संख्या को लेकर विवाद की स्थिति बन गई है। उदाहरण के तौर पर, असंघीती राय (1999) ने बड़े बांधों से विस्थापित 5.6 करोड़ लोगों का जिक्र किया है। यह आंकड़ा लोक प्रशासन संस्थान के अनुमान पर आधारित है। सुरजीत भल्ला (2001) उनके इस आंकड़े को यह कहकर चुनौती दी कि हर बड़े बांध से होने वाले डीपी का औसत 1360 है। दोनों ही तथ्य अशुद्ध आंकड़ों के आधार पर कहे गए थे। उन्होंने सभी बड़े बांधों को एक ही श्रेणी में रख दिया था। लेकिन बांधों की ऊंचाई तथा ढूब क्षेत्र अलग-अलग होती हैं। बड़े बांध 15 मीटर से 300 मीटर तक की ऊंचाई के ही सकते हैं। इस तरह उनके प्रभाव व ऊंचाई के मुताबिक प्रमुख व मध्यम श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। उनके डीपी/पीएपी की संख्या भी तदनुसार बदलती रहती है, जैसा कि निम्न अध्ययनों में आया भी है, आंध्रप्रदेश में (फनर्डीज 2001), गोवा (फनर्डीज एवं नाइक 2001), झारखंड (एकता एवं आसिफ 2000), केरल (मुरिकन 2003), ओडिशा (फनर्डीज तथा आसिफ 1997) तथा गुजरात (लोबो एवं कुमार 2009) के मुताबिक देश के 4200 बड़े बांधों में से 300 प्रमुख हैं। अन्य मध्यम श्रेणी के हैं। एक बड़े या प्रमुख बांध से 25,000 से 250,000 तक लोग विस्थापित होते हैं। एक मध्यम श्रेणी के बांध से 400 से 8,000 तक लोग प्रभावित होते हैं। जाहिर है कि भल्ला का औसत मध्यम श्रेणी तक के बांधों की तुलना में बेहद कम है जबकि असंघीती राय का अनुमान से कहीं ज्यादा। 1990 की शुरूआत में कुछ शोधकर्ताओं ने भरोसेमंद आंकड़ों के अधाव को दूर करने की कवायद शुरू की। मौजूदा अध्ययनों से निकाले गए द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर यह आंकड़ा 2 करोड़ 13 लाख डीपी/पीएपी तक (150-1990 फनर्डीज 1998: 231) पहुंचा। इस अध्ययन से साफ पता चलता है कि अधिकांश आधिकारिक आंकड़े अनुमान से कम रखे गए हैं। उदाहरण के तौर पर हीराकुंड से विस्थापित लोगों का आधिकारिक आंकड़ा 110,000 (ओडिशा सरकार 1968) था, लेकिन शोधकर्ताओं ने यह आंकड़ा 180,000 (पटनायक, दास एवं पिंशा 1987)। इसी तरह त्रिपुरा में डुंबर बांध से विस्थापित परिवारों की आधिकारिक संख्या 2,583 रखी गई जबकि वास्तव में 9,000 परिवार या 40,000 व्यक्ति थे (भौमिक 2003: 84)। असम में नलबाड़ी जिले के पगलाडिया बांध के आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक विस्थापित परिवारों की

संख्या 3,271 थी, जबकि जमीनी आंकड़ों के मुताबिक प्रभावितों की यह संख्या 20,000 परिवार (भराली 2004) थी।

* बीते 15 वर्षों में विस्थापन की समझ बढ़ी, इस पर अध्ययन भी किए गए हैं; इसी वजह से ओडिशा व आंध्रप्रदेश में अध्ययन के दौरान जहां बहुत ही कम श्रेणियां थीं, वहीं गोवा के अध्ययन में सबसे ज्यादा।

स्रोत: फनर्डीज 2008: 93

कुछ शोधकर्ताओं ने इस द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर अनुमानित संख्या का अभिलेखीय तथा जमीनी आधार पर हुए अध्ययनों से मिले आंकड़ों से तुलनात्मक अध्ययन किया तथा 1951-1995 तक के सभी विस्थापनों का आंकड़ा निकाला। ओडिशा (फनर्डीज तथा आसिफ 1997), झारखंड (एकता तथा आसिफ 2000), आंध्रप्रदेश (फनर्डीज 2001), केरल (मुरिकन 2003), 1965-2001 तक गोवा (फनर्डीज तथा नाइक 2001), पश्चिम बंगाल में 1947-2000 तक (फनर्डीज 2006), असम (फनर्डीज तथा भराली 2006), मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा (फनर्डीज तथा भराली 2010) तथा गुजरात में 1947-2004 (लोबो तथा कुमार 2009)। ये तथा अभी भी जारी ऐसे ही अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि विकास परियोजनाओं में 1951 तथा 95 तक आंध्रप्रदेश, ओडिशा तथा झारखंड में हर परियोजना में 10 लाख हैक्टेयर जमीन ली गई, पश्चिम बंगाल में 20 लाख हैक्टेयर जमीन, असम में 567,000 हैक्टेयर, गुजरात में 20 लाख हैक्टेयर से ज्यादा, गोवा में कुल जमीन का 5 फीसदी तथा केरल में कुल जमीन का 3.5 फीसदी जमीन विकास परियोजनाओं की भेंट चढ़ गई। अध्ययनों से यह भी संकेत मिले कि विकास परियोजनाओं में वर्ष 2000 तक कुल ढाई करोड़ हैक्टेयर जमीन ली गई।

इसका 60 फीसदी हिस्सा निजी तथा जबकि शेष सार्वजनिक जमीन थी (सारणी 1)। अधिकांश बांधों ने जो जमीन डुबोई उसका दो तिहाई हिस्सा सार्वजनिक क्षेत्र का था। इससे पता चलता है कि आखिर डीपी/पीएपी की संख्या क्यों इतनी कम अनुमानित है तथा क्यों हर 10 डीपी में 6 पीएपी होते हैं। उदाहरण के तौर पर हीराकुंड अधिकारियों ने सार्वजनिक जमीन पर निर्भर लोगों की संख्या गिनी ही नहीं। जबकि शोधकर्ताओं ने उन्हें शामिल कर यह संख्या 180,000 तक पहुंचा दी। आंध्रप्रदेश के नागार्जुनसागर बांध में डुबी 70,000 एकड़ जमीन का दो तिहाई हिस्सा सार्वजनिक क्षेत्र का था। इस वजह से यह दावा किया गया कि बांध से केवल 30,000 लोग ही विस्थापित हुए, क्योंकि इनमें सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभावितों को गिना ही नहीं गया (फनर्डीज 2001 : 61-63)।

इन अध्ययनों के आधार पर पहले के आंकड़ों को सुधारा गया। ओडिशा में 16 लाख डीपी/पीएपी की पहचान की गई जबकि आंध्रप्रदेश में 32 लाख की। इनमें से 80 प्रतिशत परियोजनाएं 1951-95 तक की थीं। झारखंड तथा केरल में करीब 60 प्रतिशत परियोजनाओं का अध्ययन किया गया। गुजरात में लगभग सभी परियोजनाओं के अध्ययन से यह संख्या 43 लाख डीपी/पीएपी तक पहुंची, वहीं पश्चिम बंगाल में ऐसे लोगों की संख्या 70 लाख रही। असम में यह आंकड़ा 19 लाख था जबकि गोवा में 60,000 (सारणी 2)। पुराने आंकड़ों को अपडेट किया जाए तो ओडिशा तथा

झारखंड में 10 से 25 लाख तक डीपी/पीएपी होंगे। आंध्रप्रदेश में 40 लाख, केरल में 10 लाख तथा गोवा में यह संख्या एक लाख होगी। इस अध्ययन में छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश सरीखे उच्च विस्थापन दरों वाले राज्यों को शामिल नहीं किया गया है। इन आंकड़ों के आधार पर तथा अभी भी जारी अध्ययनों के आधार पर मोटे तौर पर 1947-2000 तक कुल डीपी/पीएपी लोगों की संख्या 6 करोड़ तक पहुंचती है (फनर्डीज 2008 : 93)।

कमज़ोर पुनर्वास

इन अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि विस्थापितों में से बहुत कम लोगों को ही कहीं और बसाया जा सका है। ओडिशा में उसके कुल डीपी में से 35.27 फीसदी ही फिर से बस पाए, आंध्रप्रदेश में पुनर्वासित लोगों का आंकड़ा 28.82 फीसदी रहा तो गोवा में यह 40.78 फीसदी तक पहुंचा। वहीं केरल में महज 13.68 फीसदी लोगों को ही कहीं और रहना नसीब हो पाया, पश्चिम बंगाल में 11.18 तथा गुजरात में 23.82 फीसदी आबादी पुनर्वासित हो पाई (सारणी 1.3)। जिन राज्यों का अध्ययन किया गया है उनमें कुल मिलाकर महज 17.94 प्रतिशत आबादी का ही पुनर्वासन हो पाया है। हम यहां कहीं और बसने (री-सेटल) की बात कर रहे हैं पुनर्वास (रीहैबिलिटेशन) की नहीं। ये दोनों प्रक्रियाएं बिल्कुल जुड़ा है। कहीं और बसने का अर्थ है एक बार भौतिक तौर कहीं और चले जाना, किसी तरह की मदद मिले या मिले बौरा। इनकी जरूरत केवल विस्थापितों को होती है। वहीं पुनर्वास का मतलब है लोगों के आर्थिक संसाधनों, सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक ढांचों और सामुदायिक मदद के समूचे ढांचे के साथ कहीं और बस जाना। यानी संक्षेप में कहें तो आजीविका का पुनर्वास। इसकी जरूरत पीएपी को भी होती है। लेकिन यह हो नहीं पाया। अधिकांश डीपी को भौतिक तौर पर कहीं और बसने के अलावा अन्य किसी भी तरह की सुविधाएं नहीं दी गईं। उदाहरण के तौर पर, पश्चिम बंगाल का मयूराक्षी बांध तथा गुजरात के उकाई बांध से बड़ी संख्या में लोग विस्थापित हुए लेकिन इन बांधों से संचाइ नहीं होती। इसी तरह आंध्रप्रदेश के नागार्जुन सागर के विस्थापितों को 40 साल के बाद जाकर संचाइ की सुविधा मिल पाई। ऐसे में निश्चित तौर पर वे अपनी जमीन का अधिकतम फायदा उठाने में नाकाम रहे। चूंकि पुनर्वासहट की गुणवत्ता ही काफी लचर रही इसलिए इसका पुनर्वास की ओर कोई जोर नहीं रहा।

पुनर्वासहट

कई अधिकारी पुनर्वासहट की प्रक्रिया को यह बताकर उचित ठहराते हैं कि परियोजना के तहत विस्थापितों को जो मुआवजा दिया गया है दरअसल वह पुनर्वास है। वास्तविकता यह है कि मुआवजा केवल पट्टे की जमीन के बदले में दिया गया और अधिकांश मामलों में यह उसके लिए भी कम ही था। यह उस क्षेत्र में बीते तीन साल के बाजार मूल्य के मुताबिक तय किया जाना था। यह सभी जानते हैं कि रजिस्ट्रेशन के दौरान जमीन के वास्तविक मूल्य के 40 फीसदी से अधिक कीमत कोई नहीं चुकाता।

दूसरी बात यह कि ग्रामीण क्षेत्रों को आमतौर पर और



आदिवासी क्षेत्रों को खासतौर पर हापिछड़ाल माना जाता है। ऐसे में जो भी थोड़ी बहुत जमीन उनके हिस्से में है उसकी कीमत बेहद कम आकी जाती है। तीसरी बात यह कि सार्वजनिक साझा संसाधन, जिनमें से अधिकांश आदिवासी क्षेत्रों में होते हैं का कोई मुआवजा नहीं दिया जाता। उदाहरण के तौर पर, 1980 के दशक के बीच में, नेशनल एल्युमिनियम कारपोरेशन (नालाको) ने ओडीशा के अंगुल जिले में एक यूनिट बनाई तथा दूसरी कोरापुट के आदिवासी क्षेत्र में बनाई।

अंगुल में अधिग्रहीत की गई जमीन का 18 प्रतिशत हिस्सा सार्वजनिक था, इसमें सड़कें, तालाब व स्कूलों आदि को विस्थापित किया गया। वहीं कोरापुट में 58 प्रतिशत अधिग्रहीत जमीन सार्वजनिक साझा संसाधन की थी जिन पर आदिवासियों की आजीविका निर्भर थी। न तो यह बदली गई न ही इसका मुआवजा दिया गया। उन्हें प्रति एकड़ औसतन 2,700 रुपए की दर से मुआवजा बांट दिया गया, जबकि अंगुल में पट्टाधारियों को 25,000 हजार रुपए प्रति एकड़ का मुआवजा मिला (फर्नांडीज तथा राज 1992: 92)।

हमें पुनर्वास नीति को इसी संदर्भ में समझने की जरूरत है। 1960 में कुछ प्रशासकों ने महसूस किया कि भूमि अधिग्रहण समाज में बढ़ती असमानता की एक बड़ी वजह है, और इसीलिए इसकी प्रक्रिया में बदलाव लाया जाना चाहिए। तब खाद्य, कृषि, सहकारिता तथा सामुदायिक विकास मंत्रालय जो बाद में ग्रामीण विकास मंत्रालय बना, की ओर से एक 17 सदस्यीय विवेशज्ञों का समूह बनाया गया। इसे भूमि अधिग्रहण से संबंधित प्रक्रिया तथा कानूनों के अध्ययन का काम सौंपा गया। वर्ष 1967 में सौंपी गई अपीलिंग्स में इस समूह ने कई प्रमुख बदलाव संबंध सुझाव दिए (गुहा, 2007)। इसी वर्ष टीएन सिंह फामूर्टे के तहत सार्वजनिक क्षेत्र की खदानों

तथा उद्योगों से होने वाले विस्थापितों के हर परिवार को एक नौकरी दिए जाने का सुझाव दिया गया। वर्ष 2004 में घोषित पहली पुनर्वास नीति के पहले तक यही एकमात्र केंद्रीय सुझाव था जो पुनर्वास की झलक देता था। अपनी कमियों के बावजूद यह सही दिशा में उठाया गया एक कदम था। हालांकि मशीनीकरण के साथ-साथ अक्षशल नौकरियों के अवसर घटने लगे और स्कोप (स्टैंडिंग कमिटी ऑफ पब्लिक एंटरप्राइजेस) ने इस फामूर्टे को 1986 में खारिज कर दिया (एमआरडी 1993)।

इसके 18 वर्ष बाद गृह मंत्रालय के कल्याण विभाग ने आदिवासी पुनर्वास के अध्ययन के लिए एक समिति का गठन किया। इसकी जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग ने पाया कि 1951-1980 के बीच हुए डीपी/पीएपी में से 40 फीसदी आबादी आदिवासियों की थी। इस समिति ने पुनर्वास नीति की जरूरत को स्वीकार करते हुए सुझाव दिया कि यह सभी डीपी पर लागू होनी चाहिए ना कि महज आदिवासियों पर। साथ ही यह भी कहा कि नीति का क्रियान्वयन कानूनी बाध्यताओं के साथ होना चाहिए (भारत सरकार 1985)। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने आठ साल इसके लिए इंजिजर किया, जब तक विश्व बैंक ने सरदार सरोवर परियोजना से अपने हाथ पीछे नहीं खींच लिए। इसके बाद कहीं जाकर नीति का एक प्रारूप तैयार किया गया (एमआरडी 1993), तथा इसको 1994 में संशोधित किया गया (एमआरडी 1994)।

1993 के प्रारूप में यह स्वीकारा गया था कि हजारों, लाखों डीपी के साथ अन्याय किया गया गया है, और उनका पुनर्वास नहीं हो पाया है। इसने यह भी जिक्र किया कि स्कोप (स्टैंडिंग कमिटी ऑफ पब्लिक एंटरप्राइजेस) की ओर से टीएन सिंह फामूर्टे को खारिज कर दिया गया,

जबकि न्याय की मांग यह है कि आदिवासियों और दलितों की विशेष जरूरतों को देखते हुए एक खास नीति बनाई जानी चाहिए। इस वजह से इस मुद्दे पर मंत्रालय की चिंता उनके प्रति नजर आई जो विकास की कीमत चुकाते हैं। वर्ष 1994 में पुनर्वास नीति के प्रारूप में 16 मंत्रालयों और विभागों की प्रतिक्रिया दर्ज थी, जो वास्तव में सरकार का नजरिया दर्शाती थी। इसने पहले की असफलताओं के सभी संदर्भ, यहां तक कि स्कोप की सिफारिश को भी भुला दिया। बल्कि इसकी शुरूआत ही यह कहते हुए हुई कि नई आर्थिक नीति के लागू होने के बाद भारतीय व विदेशी निजी निवेशकों द्वारा और ज्यादा जमीनों का अधिग्रहण किया जाएगा। इसकी वजह से पुनर्वास नीति की जरूरत और शिश्त से महसूस हुई (एमआरडी 1994: 1.1-1.4)। हालांकि इसके पीछे सारा जोर उदारीकरण का था ना कि डीपी/पीएपी की भलाई का।

एक हजार से भी ज्यादा सामाजिक कार्यकर्ताओं के समूह, शोधकर्ताओं, कानूनी कार्यकर्ताओं तथा हजारों डीपी/पीएपी ने पुनर्वास नीति के प्रारूप का विश्लेषण किया और नीति का एक विकल्प तैयार कर दिया। यह प्रक्रिया एक साल से भी ज्यादा समय तक चली और समन्वय ने कुछ ऐसे सिद्धांत विकसित किए जिनके आधार पर नीति तथा कानूनों को बनाया जाना चाहिए था। यह वैकल्पिक नीति सचिव, ग्रामीण विकास, भारत सरकार को अक्टूबर 1995 की शुरूआत में ही दे दी गई। (फरवरी 1997 तक की सभी नीतियों, कानूनों, प्रारूपों तथा आलोचनाओं को देखें फर्नांडीज एवं पराजपे 1997)। तीन साल बाद ग्रामीण क्षेत्र व रोजगार से जुड़े मंत्रालय ने एक और प्रारूप (एनपीआरआर 1997) विकसित किया, इसमें एलएप्यू में कई संशोधन किए गए थे (एलएप्बी 1998)। नागरिक समूहों के समन्वय ने विश्लेषण के बाद पाया कि प्रारूप नीति का आधा हिस्सा तो स्वीकार करने योग्य है लेकिन

यह भी पाया कि उसके सभी सिद्धांत खारिज कर दिए गए हैं। इस तरह एक बार फिर उन्होंने मन्त्रालय के साथ विभिन्न विकल्पों पर चर्चा का दौर शुरू कर दिया। ग्रामीण विकास मन्त्रालय की ओर से जनवरी 1999 में बुलाई गई एक बैठक में इस बात पर अलिखित सहमति बन गई कि नागरिक समूहों के परामर्श से एक नीति बनाई जाएगी तथा कानून का प्रारूप भी विकसित होगा जिसमें उक्त सिद्धांतों को समाहित किया जाएगा।

विस्थापन की वजह से अधिकांश आदिवासी, दलित व अन्य ग्रामीण गरीब, खासकर पर महिलाओं का नुकसान होता है। विस्थापन तथा वंचित रहने की वजह से इन वर्गों के अधिकांश डीपी/पीएपी उपेक्षित कर दिए जाते हैं। हालांकि विस्थापन तथा वंचितों के मुद्दे का एक अहम अंग डीपी/पीएपी का प्रकार तथा इस मुद्दे पर राष्ट्रीय जागरूकता का अभाव है। पुनर्बसाहट किए गए लोगों में से अधिकांश का पुनर्वास न हो पाने का एक अहम कारण यह है कि अधिकांश डीपी आदिवासी, दलित वा अन्य ग्रामीण गरीब होते हैं जिनका समाज के अन्य वर्गों के साथ औपचारिक परिचय नहीं होता। हालांकि वर्ष 2003 में एक नीति बनाई गई और 2004 में बिना किसी सलाह-मशवरे के लागू कर दी गई। डीपी/पीएपी के अध्ययन में शामिल ज्यादातर लोगों का मानना था कि यह नीति बेहद कमज़ोर है (फर्नांडीज 2004)। इसलिए केंद्र सरकार की राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने जो मई 2004 से अस्तित्व में आई, ने एक नई नीति का प्रारूप तैयार किया जिसे अधिकांश लोगों ने स्वीकार करने योग्य माना क्योंकि यह उनके विचारों से मिलती-जुलती थी (सेरी 2006)। ग्रामीण विकास मन्त्रालय ने इससे संबंधित एक अन्य प्रारूप तैयार किया जिसमें 2004 की नीति को थोड़ा और बेहतर किया गया था (सिंह 2006)। हालांकि केंद्र सरकार ने बाद वाली नीति की संशोधित नीति के तौर पर 31 अक्टूबर 2007 को घोषणा कर दी और पुनर्वास विधेयक तथा भूमि अधिग्रहण अधिनियम में संशोधन के लिए प्रस्ताव भी तैयार कर दिया। इन दस्तावेजों की भूमिका काफी सीमित थी। इन सभी प्रारूपों तथा नीतियों में विस्थापन को बेहद सामान्य तौर पर लिया गया था।

हालांकि प्रारूप के दस्तावेजों के जरिए मन्त्रालयों के प्रशासनिक अधिकारियों ने विस्थापन के दुष्प्रभावों की ओर ध्यान दिया और इसी संदर्भ में डीपी/पीएपी को राहत पहुंचाने की कोशिश की गई। हालांकि कई ताकतवर मन्त्रालयों, जिनके इस मसले पर व्यापारिक हित जुड़े हुए थे ने इस प्रयासों को काफी हद तक सीमित कर दिया। इन सारे हालात के बीच नागरिक समूहों ने अनुसुनेत तबके की आवाज बनने की अपनी मुहिम जारी रखी। इस वजह से प्रारूप में कुछ सुधार लाया जा सका। लेकिन इससे संबंधित अंतिम नीतियां तथा भूमि अधिग्रहण एवं पुनर्वास से संबंधित विधेयकों ने ये प्रयास दृष्टित नहीं हो सके। इनमें डीपी/पीएपी के हितों की बजाय व्यावसायिक हित ज्यादा नजर आए।

लाचारी से बदलाली तक

अध्ययनों से पता चलता है कि विस्थापन और वंचित होने का पहला नीतजा निर्धनता के तौर पर सामने आता है। निर्धनता सीधे लोगों की आर्थिक स्थिति की बदलाली और परियोजना के चलते उनकी आजीविका से हाथ धो बैठने की स्थिति से जुड़ी हुई है, इसमें पहले से उनकी गरीबी

की स्थिति का कोई लेना-देना नहीं है। विस्थापन की वजह से बहुसंख्यक आबादी निर्धनता या दरिद्रगी की ओर धकेल दी जाती है, वहीं अल्पसंख्यक आबादी को खासकर ताकतवर तबके को इससे अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर करने में मदद मिलती है (कार 1990)। विस्थापन की वजह से अधिकांश आदिवासी, दलित व अन्य ग्रामीण गरीब, खासकर पर महिलाओं का नुकसान होता है। विस्थापन तथा वंचित रहने की वजह से इन वर्गों के अधिकांश डीपी/पीएपी उपेक्षित कर दिए जाते हैं। हालांकि विस्थापन तथा वंचितों के मुद्दे का एक अहम अंग डीपी/पीएपी का प्रकार तथा इस मुद्दे पर राष्ट्रीय जागरूकता का अभाव है। पुनर्बसाहट किए गए लोगों में से अधिकांश का पुनर्वास न हो पाने का एक अहम कारण यह है कि अधिकांश डीपी आदिवासी, दलित वा अन्य ग्रामीण गरीब होते हैं जिनका समाज के अन्य वर्गों के साथ औपचारिक परिचय नहीं होता।

कमज़ोर तबके की उपेक्षा:

विस्थापन की वजह से पहले से ही गरीब तबके को ऐसे नए समाज में धकेल दिया जाता है जिसमें उनके लिए आपस में जुड़ाव की कोई तैयारी नहीं होती। इसीलिए, भले ही उनका पुनर्बसाहट कर दिया जाए वे नए समाज और अर्थिक स्थिति में खुद को ढालने के लिए कर्तव्य तैयार नहीं होते। उदाहरण के तौर पर, ओड़ीशा के राउरकेला स्टील प्लांट में नैकरी पर रखे गए कई डीपी को यह कहते हुए नैकरी से बाहर कर दिया गया कि वे अनुशासनहीन हैं, शराब पीते हैं तथा अनियमित हैं। एक अध्ययन (वीगस 1992: 42-43) से पता चलता है कि इसका असल कारण यह है कि उन्हें अनौपचारिक खेतिहार पृष्ठभूमि से औद्योगिक परिवृश्य में धकेल दिया गया। ऐसे में काम करने के लिए उनकी समय संबंधी समझ में भिन्नता आ गई। डीपी इससे पहले समय की औद्योगिक अवधारणा से परिचित नहीं थे और इसीलिए वे उसे अनुशासन और समय की पांचदंडी के साथ नहीं चल सके जो विस्थापन ने उनके ऊपर थोप दिया था। ऐसे में शराब पीना उनके लिए इस स्थिति ने न जूझ पाने की नाकामी छिपाने का तरीका बन गया। डीपी/पीएपी की उपेक्षा का एक और चिन्ह बहुविस्थापन के तौर पर सामने आया। ऐसा दीर्घवधि क्षेत्रीय योजना के अभाव के चलते हुआ। उदाहरण के तौर पर रिहंद बांध के ज्यादातर विस्थापित बीते तीस वर्षों में तीन बार उजाड़े गए (गांगुली ठकुरात 1989 : 47-48)। कर्नाटक के काबिनी बांध से 1970 में विस्थापित हुए सोलिगा आदिवासियों को राजीव गांधी नेशनल पार्क (चेरिया 1996) से एक बार फिर विस्थापन का खतरा झेलना पड़ा। मिजोरम के आदिवासी परिवार जिन्होंने अपनी जमीन आईजॉल के लोंगपुइ एउरपोट के बनने में गंवा दी थी, 1990 के एक दशक में तीन बार विस्थापित हुए। पहली बार एउरपोट के लिए, फिर जहां उन्हें बसाया गया वहां की जमीन सड़क बनाने के लिए अधिग्रहीत कर ली गई, और तीसरी बार वे स्टाफ क्वार्टर के लिए जमीन की जमीन की वजह से उजाड़े गए (गर्ग, 2007)।

बहुविस्थापन के ऐसे और भी उदाहरण हैं। इसका मुख्य कारण किसी क्षेत्रीय योजना का अभाव है। बल्कि यह योजनाकारों की इस प्रवृत्ति की वजह से है जिसमें वे जरूरत से ज्यादा जमीन अधिग्रहीत कर लेते हैं। उदाहरण के तौर पर संभलपुर के पास बसा बुलाशहर हीराकुंड बांध के लिए अधिग्रहीत अतिरिक्त जमीन पर बसाया गया है। आंध्रप्रदेश के मेदक जिले में भेल ने अपनी अतिरिक्त जमीन अनुसंधान संस्थान ह्यार्डीसेटीलू को दे दी। ओड़ीशा के कोरापुट जिले के एमआईजी-एचएल प्लांट सुनाबेदा में 1966 में अधिग्रहीत जमीन का करीब दो तिहाई हिस्सा तीन दशक तक बिना किसी उपयोग के पड़ा रहा। यहां 468 परिवार बेदखल किए गए जो न तो बसाए गए और ना ही इस जमीन पर बनीकरण हुआ। एक रिपोर्ट के मुताबिक इसका एक हिस्सा एक निजी कंपनी को भारी मुनाफे में बेच दिया गया (पांडे 1998 बी:35)

हमले की जद में गरीब:

गरीबों के पुनर्वास तथा इससे संबंधित भरोसेमंद आंकड़ों के अभाव का एक अहम कारण संभवतः यह है कि अधिकांश डीपी/पीएपी निशक वर्ग से आते हैं यानी सत्ता से दूर। आदिवासी जो कुल आबादी का 8.08 प्रतिशत हैं डीपी/पीएपी के 40 फीसदी से भी ज्यादा हैं (सारणी 1.4)। आंध्रप्रदेश में उनकी कुल आबादी राज्य की आबादी का करीब 6 प्रतिशत है लेकिन यहां डीपी/पीएपी में इनकी हिस्सेदारी 30.19 प्रतिशत है (फर्नांडीज 2001: 85)। ओड़ीशा में वे कुल आबादी का 22 प्रतिशत हैं जबकि डीपी/पीएपी में उनकी हिस्सेदारी है 40.38 प्रतिशत (फर्नांडीज 1997: 112)।

यहां तक केरल और कर्नाटक में जहां वे कुल आबादी के एक प्रतिशत के करीब हैं, बड़ी परियोजनाओं (मुरिकन 2003) तथा काबिनी बांध (चेरिया 1996) में उनकी संख्या बहुतायत में है। यानी संख्या में भले ही कम या ज्यादा हों, पर डीपी/पीएपी में आदिवासी आबादी की बहुतायत है। इसके बाद नंबर आता है दलितों का जो डीपी/पीएपी में करीब 20 फीसदी हैं (महापात्रा 1994)। आंध्रप्रदेश में जहां वे कुल आबादी का महज 16 प्रतिशत हैं, डीपी/पीएपी में उनकी भागीदारी 20 फीसदी की है। इनके अलावा अन्य गरीबों की, खासकर अन्य पिछड़ा वर्ग की इसमें हिस्सेदारी काफी ज्यादा है, भले ही उनकी वास्तविक संख्या का हमें पता नहीं हो। इनका पता चलना इसलिए भी काफी मुश्किल है हाल तक उनकी गिनती सामान्य श्रेणी में ही की जाती रही है। आंध्रप्रदेश के श्रीहरिकोटा तथा सिम्माद्रि तथा केरल में स्पेस स्टेशनों जैसी परियोजनाओं के आंकड़े बताते हैं कि मछुआरे व खनन से जुड़े श्रमिक परिवार कुल डीपी/पीएपी परिवारों के 30 प्रतिशत हैं (फर्नांडीज 2001 : 85)। यानी वे भी कुल डीपी/पीएपी के 20 प्रतिशत तक हो सकते हैं।

आदिवासियों व दलितों की संख्या के अनुमान से कम होने तक ही बात सीमित नहीं है। भूमि अधिग्रहण कानून में केवल उन्हीं को मान्यता मिलती है जो पूँजीधारक हैं। इसलिए केवल वही आधिकारिक आंकड़ों में शामिल हो सकते हैं। अधिकांश आदिवासी जो पारंपरिक तौर पर वनों तथा अन्य सामुदायिक साज्जा संसाधनों पर निर्भर हैं, इस गिनती में शामिल नहीं हैं। इसका उदाहरण छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव में दल्ली राजहरा खदान, ओड़ीशा में



हीराकुंड तथा आंध्रप्रदेश में नागर्जुनसागर के हैं, जिनका जिक्र पहले ही किया जा चुका है। अधिकांश दलित भूमिहीन मजदूर हैं और उनके पास अपना पट्टा तक नहीं है। वे गांव में अपने समुदाय के साथ सेवाओं के आदान-प्रदान पर निर्भर हैं। इसी बजह से वे डीपी/पीएपी के तहत गिनती में शामिल नहीं होते। जहां उनकी संख्या ज्यादा है वहां बड़े अनुपात में शामिल हैं। उदाहरण के तौर पर वे केरल में नेदुमबेसरी एअरपोर्ट के विस्थापितों में 43 प्रतिशत हैं। लेकिन पुनर्वास के नतीजों पर कई बार आश्रय होता है। कई पीएपी जो बेहतर परिवारों के हैं, समृद्ध जिलों में निवास करते हैं, अपनी उन जमीनों की बेहतर कीमत पा जाते हैं जो बहुत उपजाऊ नहीं है। जैसा कि ओडिशा के अंगुल जिले में कोयले की खदानों और नालको प्लाट के डीपी/पीएपी की स्थिति में हुआ (फर्नांडीज तथा राज 1992 : 123-125)।

अधिकांश आदिवासी तथा दलित न तो मुआवजे के पात्र बने और ना ही उनका पुनर्वास हो सका। ऐसे में उनकी आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक हालत में काफी गिरावट आ गई। उदाहरण के तौर पर सुग्रीमकोट ने यह जानने के लिए ह्याओम्बड़स्मैन्ह की नियुक्ति की कि 1982 में दिल्ली में आयोजित एशियन गेम्स की सुविधाओं के लिए बन रहे ढांचों का काम कर रहे 150,000 निर्माण मजदूरों में से 30-40,000 बंधुआ

मजदूर थे। इन्हें ठेकेदारों द्वारा यह लालच देकर दिल्ली लाया गया था कि उन्हें बगदाद भेजा जाएगा। दिल्ली में दासों जैसी हालत में रहने के बाद उन्हें इस बात की भी कोई उम्मीद नहीं रह गई थी कि वे अपने परिवारों के पास लौट पाएंगे। जब उनसे यह पूछा गया कि उन्होंने ठेकेदारों की बात क्यों मानी तो उन्होंने अपना बचपन हीराकुंड व ऐसी ही अय परियोजनाओं, औद्योगिकीकरण की बजह से हुए निर्वनीकरण तथा विस्थापन की भेंट चढ़ा दिया था। ऐसे में बेहतर नौकरी की बातों के कारण वे आसानी से ठेकेदार के जाल में फंस गए (फर्नांडीज 1986 : 268-271)।

सर्वाधिक प्रभावित महिलाएं:

अभाव की होने वाले उष्मभाव का आकलन करना बेहद मुश्किल है। इससे सभी प्रभावित हुए हैं लेकिन हर समूह में महिलाओं ने विकास की सबसे ज्यादा कीमत चुकाई है। यहां तक कि जब कभी किसी परियोजना में पुनर्बसाहट के लिए कोई पैकेज घोषित होता है जो सारा ध्यान केवल पुरुषों पर ही दिया जाता है, महिलाओं की पूरी तरह से उपेक्षा होती है। उदाहरण के तौर पर नौकरी हमेशा परिवार के ह्यामुखियालू को दी जाती है। अधिकांश परिवारों में पुरुष ही मुखिया होते हैं (गांगुली ठकुराल तथा सिंह 1995)। अगर पुनर्बसाहट में जमीन का पट्टा दिया

जा रहा हो तो वह भी परिवार के मुखिया के नाम पर ही होता है। सामान्यतः यह भी पुरुष के ही नाम पर होता है। जाहिर तौर पर सत्ता पुरुष या उसके बेटे के हाथों में ही केंद्रित रह जाती है। महिला सत्ताहीन तथा संपत्तिहीन ही रह जाती है। हालांकि आदिवासी परिवारों में परंपराओं के चलते महिलाओं को सामुदायिक संसाधनों व जमीन पर कुछ हक दिया जाता है। कुछ हद तक दलित महिलाओं को भी यह हक है लेकिन पुरुषों के बराबर नहीं। ऊंची जाति की महिलाओं का सामाजिक स्तर जरूर बेहतर होता है, वह इसलिए कि उनके हाथों में आर्थिक संपत्ति होती है। दलित महिलाएं दूसरों की जमीन पर काम करती हैं और सारी आमदानी अपने परिवार को दे देती हैं। वहीं आदिवासी महिलाओं की तुलनात्मक तौर पर बेहतर स्थिति सामुदायिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण की बजह से होती है (मेन 1995: 101)।

लेकिन विस्थापन की बजह से वह अपनी जमीन और जंगलों से बेदखल कर दी जाती है जो समाज की उसकी स्थिति तथा आर्थिक सक्रियता के मुख्य कारक होते हैं। वह अपना सामाजिक तथा आर्थिक दर्जा खो देती है और पहले से दयनीय हालत में चली जाती है। यहां भी जमीन पुरुषों के ही नाम पर दी जाती है (ठेकेदारा 1993)। जहां आर्थिक तथा सामाजिक सत्ता पुरुषों को हस्तारित होती है, महिलाओं की पारपरिक भूमिका में कोई बदलाव

नहीं आता। पुरुष को तो नौकरी मिल जाती है लेकिन महिला को पहले की ही तरह अपने परिवार की देखभाल करनी होती है। वह भी उस हालत में जब परिवार का केवल एक ही व्यक्ति कमाने वाला होता है और भोजन के मुख्य स्रोत बने रहे जमीन व जंगल उनकी पहुंच से दूर हो चुके होते हैं। महिला को अपनी बुनियादी जरूरतों की सभी वस्तुएँ बाजार से अपने पति की इकलौतै वेतन से खरीदी पड़ती है। वहीं पुरुष, परियोजना के अन्य विस्थापितों की जीवन-शैली से प्रभावित होकर अपने वेतन का एक हिस्सा कपड़ों, मनोरंजन और दूसरे मदों में खर्च करने लगता है।

इससे परिवार की जरूरतों के लिए काफी कम पैसा बचता है। ऐसे में परिवार की पोषकीय तथा स्वास्थ्य की स्थिति सामान्य तौर पर तथा महिला का खासकर बिगड़ने लगती है। पुनर्बसाहट बसितों बनाते समय परियोजना प्राधिकरण का ध्यान महिलाओं की जरूरतों व साफ-सफाई की ओर नहीं जाता। भारतीय संस्कृति में जहां महिलाओं को कई निजी जरूरतें पूरी करने के निजता की जरूरत होती है, वहीं इन बसितों में ऐसी जरूरतों की पूर्ति के लिए विशेष स्थान या सुविधा के अभाव में महिलाओं को मजबूरी में पड़ोस में जाकर सार्वजनिक संसाधनों का इस्तेमाल करना पड़ता है, जिनका प्रयोग आमतौर पर ग्रामीण चारागाह के तौर पर करते हैं। ऐसी हालत में महिलाओं के बीच में लड़ाई-झगड़े बेहद सामान्य हैं। बहुत से पुरुष ऐसी हालत से निजात पाने के लिए शराब का सहारा ले लेते हैं और विस्थापन तथा अभाव की यंत्रणा के बीच नए समाज में ताल-मेल बिठाने की कोशिश करते हैं। इन सबके नीति में परियों की पिटाई के मामले बेहद आम हो जाते हैं। कई मामलों में तो महिलाओं की ओर से अकेलापन दूर करने के लिए शराब पीने के उदाहरण समान आते हैं। क्योंकि उन्हें घर के काम निपाटने के बाद बाहर का कोई काम ही नहीं होता (फर्नांडीज तथा राज 1992)।

गरीबी से हाशिए की ओर:

कोई बेहतर विकल्प युहेंगा कराए बगैर भरण-पोषण या आजीविका का नुकसान होने का पहला नीता होता है गरीबी या दरिद्रता। बहुत से डीपी/पीएपी खासकर पिछड़े व सत्ताहीन तबके से जुड़े लोग गरीबी या दरिद्रता से भी आगे अपनी आर्थिक स्थिति के खराब होने की वजह से हाशिए पर धकेल दिए जाते हैं। खासकर उनके सामाजिक, सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक स्तर के खोने के बाद। उनकी आर्थिक स्थिति, संस्कृति और पहचान जमीन, जंगलों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से उनके जुड़ाव पर निर्भर होती है। लेकिन परियोजनाओं के चलते वे इन सबसे दूर हो जाते हैं और अपनी सांस्कृतिक विरासत, आध्यात्मिक विश्वास, इतिहास, मिथकों आदि से भी कट जाते हैं। विस्थापन की वजह से उनकी पारंपरिक जीवन-शैली, सामाजिक ताना-बाना और सांस्कृतिक अभ्यास सभी बिगड़ जाते हैं तथा इसका असर उन पर मनोवैज्ञानिक ढंग से पड़ता है (पर्मई 2001)। इन सबके अलावा एक समाज जो पूरी तरह पैसों पर आधारित अर्थव्यवस्था से इधर एक अनौपचारिक जीवन जो रहा था, अचानक एक ताकतवर, औपचारिक धन-केंद्रित समाज में जबरन धकेल दिया जाता है जिनके साथ ताल-मेल बिठाने तक की उसकी तैयारी नहीं होती। इस हालत में वे उस संस्कृति को आत्मसात करने की कोशिश करते हैं जो परियोजना से जुड़े बाहरी लोग अपने साथ लाते हैं। बाहरी लोग खुद को उनसे बेहतर मानते हैं।

ऐसे में स्थानीय लोग खुद को कमतर आंकने लगते हैं और अपने समुदाय को भी हीनभावना से देखने लगते हैं (गावेंटा 1980 : 7-9)।

यह स्थिति विस्थापितों को हाशिए पर धकेले जाने के लिए अंतर्निहित है और आर्थिक बदहाली से बाद ही स्थिति है। इससे उनकी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति और भी बदहाल हो जाती है। वे खुद को ऐसे समुदाय के तौर पर देखना शुरू कर देते हैं जो खुद के विकास के योग्य ही नहीं है या ऐसी परियोजना के लाभ से अपना हिस्सा मांग सकती है जिसके विकास की कीमत उन्होंने ही चुकाई है। इस बदहाली के चलते उनका शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, वहीं काम करने के प्रति उत्साह तथा प्रेरणा की कमी की कमी से उनमें उनके भविष्य के प्रति आशा नहीं बचती। वे अपनी ताकत को पहचानने में भी नाकाम हो जाते हैं और खुद को इस अवसाद व दबी स्थिति से उबारने में अक्षम मानने लगते हैं। कुछ तो यह भरोसा कर लेते हैं कि यही उनकी किस्मत है और दूसरे इस विचार को आत्मसात कर लेते हैं कि वे इनपर हावी हो सकते हैं क्योंकि ये उनसे निचले दर्जे के हैं। अपने जंगलों, भूमि तथा अन्य संसाधनों से अलग होने के नीतीजे में कई आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति को भुला देते हैं। जबकि इस संसाधनों के होने तक यह तय था कि उनके बीच हर चीज का समान बंटवारा और समान उपयोग होगा। लेकिन इस स्थिति से वे संरचनात्मक निर्भरता से विविंशात्मक निर्भरता की ओर बढ़ते हैं। वे अपनी आजीविका के लिए संसाधनों को नष्ट करना शुरू कर देते हैं (रेण्डी 1995)।

साफ है कि हाशिए पर धकेले जाने, दरिद्रता और अपनी स्थिति को स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति की चलते वे प्रगति करने से खुद को ही रोक लेते हैं। जॉन गावेंटा (1980 : 3-5) ने इस स्व-चित्रण को उन तीन आधारों का ही एक हिस्सा बताया जिन पर असमान समाज बनते और निपत्ते हैं। पहला चरण है कानूनी समानता। सत्ताधीश वर्ग संस्थाएं और व्यवस्थाएं बनाता है जो सभी के लिए कानूनी तौर पर उपलब्ध होती हैं लेकिन कमजोरी की इन तक पहुंच नहीं बन पाती, क्योंकि इसके लिए जिस भाषा, संस्कृति और खर्च का इस्तेमाल होता है वह उनके बस के बाहर है। उदाहरण के तौर पर, अदालतों से सभी के लिए उपलब्ध हैं लेकिन गांव से दूरी, भाषा तथा खर्च की वजह से यह आम लोगों से दूर है। ह्यांहम जानते हैं कि लोग अपने अधिकारों की प्रति के लिए अदालत जा सकते हैं, गरीब खुद को अदालत नहीं जाते पर ले जाए जरूर जाते हैं (बर्खी 1983 : 103)।

दूसरा चरण है सीमित लोगों की पहुंच का जिसके तहत व्यवस्था को चोट पहुंचाए बिना कुछ लोग कुछ खास सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। उदाहरण के तौर पर, कुछ गरीब बच्चे अमीरों के लिए बनाए गए स्कूलों में दाखिला पा जाते हैं। उनमें से कई आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारणों से स्कूल छोड़ जाते हैं। हालांकि लाभकर्ता वर्ग को यही लगता है कि वे उनके बौद्धिक स्तर तक पहुंच पाने के काबिल नहीं हैं (नाइक 1975: 8-13)। वे आर्थिक हालात की वजह से लिए गए उनके निर्णयों को सांस्कृतिक बताते हुए इस भेदभाव को सही भी मान लेते हैं। अंतिम चरण अधीनस्थ वर्ग की प्रभावी मानने की विचारधारा है जिसके तहत वे यह स्वीकार कर लेते हैं कि उनका खुद का समाज तुच्छ है। कोई भी असमान समाज तब तक नहीं जी सकता जब तक अधीनस्थ वर्ग

प्रभावी मानने की विचारधारा व मूल्यों को आत्मसात न कर ले (गावेंटा 1980: 25-30)।

उदाहरण के तौर पर पुरुष तथा महिलाएं दोनों ही इस व्यवस्था को आत्मसात कर चुके हैं जिसमें महिलाओं को दोयम दर्जा दिया जाता है, खासकर तब जब वे विस्थापितों के साथ नए क्षेत्र में पहुंचते हैं। कई बार जब बेरोजगार महिलाएं जिन्हें केवल एक व्यक्ति के वेतन से अपने परिवार का गुजर-बसर करना होता है, कम वेतन वाले अकशल काम की तलाश में जाती हैं तो पुरुष जो परियोजना कार्यालय में एक कर्मचारी या श्रमिक होता है, यह कहकर आपति जाता है कि वह एक ऑफिस कार्यकर्ता की पती है, ऐसे में निचले दर्जे का काम कैसे कर सकती है। ऐसा कर वह उस आय से परिवार को वंचित रखता है जिससे परिवार की पोषण जरूरतें कुछ हद तक पूरी हो सकती थीं (मेनन 1995 : 102)। वहीं पारंपरिक तौर पर बेहतर दर्जा रखने के बावजूद ऑडीशा तथा आंध्रप्रदेश में आदिवासी महिलाएं अकुशल श्रमिक के तौर पर कम वेतन वाले काम करने के लिए मजबूर की जाती हैं, यहां यह बात आत्मसात कर ली जाती है कि पिपुस्तात्मक समाज में महिलाएं उत्तरी बुद्धिमान नहीं हैं और इसीलिए उनके जैसा काम नहीं कर सकतीं, इसलिए उनका वास्तविक काम हाउस वाइफ या घरवाली का है और उनका स्थान घर के अंदर ही है (फर्नांडीज 2008बी: 125-126)। इसके अलावा, अभाव की वजह से प्रभावित डीपी/पीएपी प्रभावी व्यवस्था की विचारधारा के साथ ऐसे असमान टकराव की ओर धकेल दिए जाते हैं जिसके प्रति उनकी जानकारी बेहद कम होती है और अपनी आजीविका से दूर कर दिए जाने की वजह से तैयारी बेहद लचर। ऐसे में वे नई स्थिति से तालमेल नहीं बिठा पाते। उनके विस्थापन तथा अभाव की दिशा में उडाया गया हर एक कदम, जो परियोजना में अहम निर्णयों के तौर पर होता है, जिसमें कम मुआवजा और पुनर्वास का अभाव शामिल होता है, से उनके खुद को कमतर अंकने तथा दूसरों के प्रभाव में जैसे की स्थिति स्वीकार करने की प्रवृत्ति और मजबूर होती है। उनकी दरिद्रता तथा हाशिए पर जीने का एक अहम कारण निर्णयकारी वर्ग की विचारधारा है। इनमें से अधिकांश डीपी/पीएपी की भलाई की बजाय आर्थिक तरकीकों को ज्यादा तरजीह देते हैं। अधिकांश परियोजनाओं में उनके पास पुनर्बसाहट तथा पुनर्वास योजनाएं होती हैं जो भौतिक पुनर्बसाहट को ही सुनिश्चित करती हैं पुनर्वास को नहीं। और इस तरह विकास के प्रतिमानों से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उनके अधिकारों का उल्लंघन होता है तथा वे और भी अभावग्रस्त हो जाते हैं। भूमि अधिग्रहण का हर एक कदम उनके हाशिए पर धकेले जाने में अपनी भूमिका निभाता है। उनकी आजीविका बिना उनकी सहमति के अधिग्रहण कर ली जाती है। इससे वे सुनिश्चित करते हैं कि खुद के निर्णय लेने में उनकी स्थिति कमतर है। यहां तक कि परियोजना के बारे में अधिकारी भी उन्हें कुछ नहीं बताते। उदाहरण के तौर पर ओडीशा में कुल डीपी/पीएपी के 40 प्रतिशत तथा असम में एक तिहाई ने परियोजना के बारे में तब सुना जब अधिकारी उनकी जमीन के आकलन के लिए पहुंचे। अन्य को इसकी जानकारी गांव में चल रही चर्चा के दौरान मिली। उच्च शिक्षित केरल को छोड़कर बहुत ही कम डीपी/पीएपी ऐसे थे जो अखबारों में प्रकाशित परियोजना से संबंधित अधिसूचनाओं को पढ़ सकते हैं।

वहीं एक ताकतवर तबका ऐसा भी है जो उनकी इस अनभिज्ञता का फायदा उठाकर अफवाहें फैलाता है और उन्हें अपनी जमीनें बेहद कम कीमत में बेचने के लिए दबाव बनाता है। ज्ञान ही ताकत है। लेकिन इसे लोगों से दूर रखकर परियोजना निर्धारक इन कमज़ोर लोगों को निषक्त बना देते हैं। उनके अंदर असुरक्षा और भय की भावना पनपती है जिसके नतीजे में वे नियतिवाद के शिकार बन जाते हैं और प्रणति की उनकी प्रेरणा कमज़ोर पड़ जाती है (गुड 1996: 1505)। अपनी जमीन को बाहरी लोगों को बेचने से उनकी हताशा, असहायता, नियतिवाद तथा खुद को विकसित करने के लिए अक्षमता ही नजर आती है। सामुदायिक संसाधनों के सही मुआवजे के अभाव तथा बाजार भाव से बेहद कम कीमत पर जमीनों की कीमत निर्धारित किए जाने वे पिछड़े इलाकों में रह रहे इन लोगों के क्षेत्र महज लाभ के तौर देखे जाने लगते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि सामुदायिक संसाधनों पर निर्भर ये लोग जिनके पास और कोई संपत्ति नहीं होती, अपनी आजीविका बिना किसी विकल्प के दूसरों को सौंप देते हैं (सेरनिया 2007)। ऐसी स्थिति में वे प्रभावशील समाज के एकदम सामने आ खड़े होते हैं जबकि उनकी हालत दयनीय और उलट-पुलट वाली होती है। एक बेहतर समाज के साथ इस असमान टकराव की स्थिति में उनके अंदर यह भावना और भी प्रबल हो जाती है कि वे असहाय हैं तथा जो हो रहा है वही उनकी नियति है। यही नहीं, मशीनीकरण तथा श्रम बचाने वाली तकनीकों की वजह से उन्हें महसूस होता है कि खुद को कमतर आंकने की उनकी सोच गलत नहीं है। ऐसा इसलिए भी होता है कि नई सोच में उनकी पारंपरिक तकनीक को ही दरकिनार नहीं किया जाता, बल्कि जो तकनीक इस्तेमाल होती है वह इनकी पहुंच में भी नहीं होती। सही पुनर्वास के अभाव और घटिया गुणवत्ता से

रही-सही कसर भी दूर हो जाती है। अधिकांश मामलों में डीपी तभी पुनर्वासित हो पाते हैं जब वे परियोजना के खिलाफ आंदोलन छोड़ देते हैं या अधिक लाभ के लिए लड़ाई करते हैं। या फिर जब अंतरराष्ट्रीय अनुदान संस्थाएं इसके लिए दबाव बनाती हैं या सामाजिक जागरूकता के चलते प्रशासक योजना में इसे शामिल करें। अगर वे परिस्थितियां कारगर ना हों तो उस हालत में कमज़ोर लोग पूरी तरह उपेक्षित रह जाते हैं। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र में 70 के दशक में 220 में महज 133 मध्यम बांधों को ही महाराष्ट्र पुनर्वास अधिनियम 1976 के तहत लाए गए। 94,387 परिवारों में से 28.5 प्रतिशत को भूआवंटन के योग्य माना गया और उन्हें जमीन दी भी गई। बांध प्रभावितों में 31.4 प्रतिशत गैर आदिवासी तथा 15.18 प्रतिशत आदिवासी परिवार थे (फर्नांडीज 1990:36)। यहां तक कि परियोजना से जुड़े स्टाफ तक पुनर्बसाहट पैकेज को कल्याण के तौर पर देखते थे ना कि विस्थापितों के अधिकार के तौर पर। संविधान के अनुच्छेद 21 के बावजूद भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया के दौरान उनकी स्वतंत्र कामगर की स्थिति को सस्ते मजदूर के तौर पर बदल दिया गया। ऐसे तथा इसी तरह के अन्य तरीकों से उनकी संस्कृति तथा सामाजिक जिंदगी का मूल्य कमतर कर दिया गया तथा उन्हें गरीबों से बिना अधिकार के व्यक्तियों की तरह व्यवहार किया गया। उनकी आजीविका को उपभोक्ता सामग्री के तौर पर माना गया और उन्हें यह संदेश देने की कोशिश की गई वे त्याज्य सामग्री की तरह हैं। इस तरह विस्थापितों की आजीविका के प्रति समान के अभाव तथा कम मुआवजे के मिश्रण से यह सुनिश्चित किया जाता है कि खुद को कमतर ही आंके (हयर्डेरो 1989: 33-34)। सांस्कृतिक बदलाव भी इसमें जुड़ जाता है। उदाहरण के तौर पर, जैसा पहले कहा जा चुका है आदिवासी समुदाय

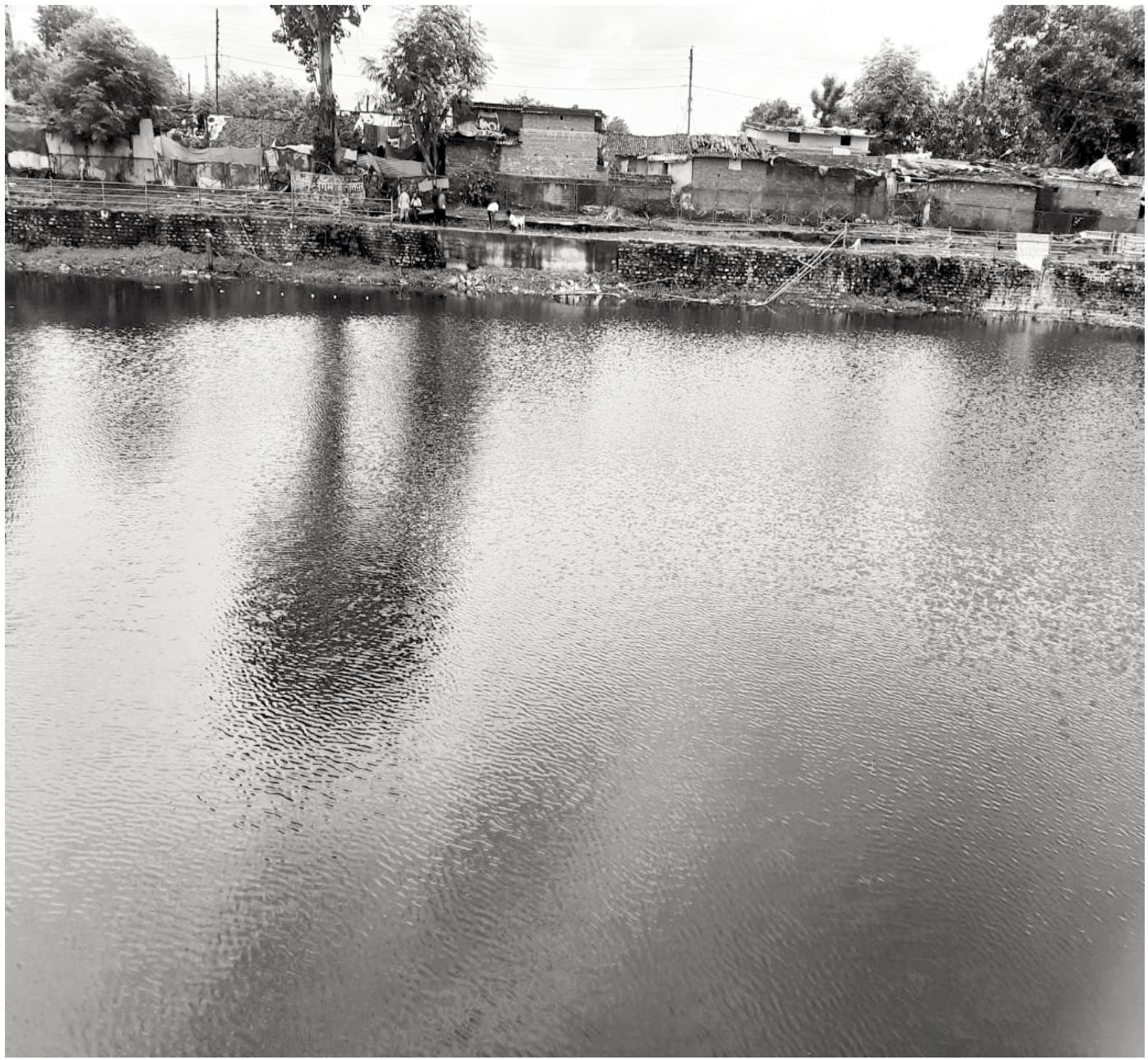
अपनी आजीविका को ऐसे संसाधन के तौर पर देखते हैं जो पुरखों से उनके पास ही बने रहे हैं। अभाव की वजह से उनकी यह परंपरा कमज़ोर होती है। ऐसे में आजीविका के लिए उन्हें अपने संसाधनों का अत्यधिक शोषण करना पड़ता है। वे अपने जंगलों की लकड़ियां काटकर जलावन के तौर पर बेचते हैं और रोजाना की मजदूरी कमाते हैं या फिर ठेकेदारों के बंधुआ मजदूरों के तौर पर काम करते हैं। इस बदलाव से भविष्य के प्रति उनकी आशाएं खत्म हो जाती हैं। वे केवल वर्तमान के ही बारे में सोचते हैं क्योंकि वे इन संसाधनों को अगली पीढ़ी के लिए बचाकर नहीं रख सकते। इसके नतीजे में वे और भी दरिद्रता की ओर बढ़ते हैं तथा सामाजिक व मनोवैज्ञानिक तौर पर टूट जाते हैं। ऐसे में सत्ताहीनता ही एक प्रवृत्ति उनके अंदर घर कर जाती है और खुद को बेहतर करने या आजाद करने की उम्मीद खत्म हो जाती है (फर्नांडीज 2000 : 218-222)।

समापनः

इस दस्तावेज के जरिए विस्थापन और अभाव को पैदा करने वाला विकास की पुरुषभूमि तथा आजीविका से वंचित रखने के अन्य तरीकों के बारे में बताया गया है जिनकी वजह से विकास परियोजनाओं के चलते लोगों को विस्थापित कर उनकी आजीविका प्रभावित की जाती है। लोगों को उनके संसाधनों से अलग करने की प्रक्रिया औपनिवेशिक दौर में ही शुरू हो गई थी और 1947 के बाद योजनाबद्ध विकास में यह और भी ज्यादा बढ़ी। यही नहीं, विस्थापन और अभाव की प्रकृति में भी बदलाव आया, पहले महज प्रक्रिया आधारित दखल सेबढ़कर यह भूमि और उनकी आजीविका के सीधे नुकसान तक पहुंच गई। धीरे-धीरे इसकी तीव्रता बढ़ी लेकिन जागरूकता और पुनर्वास दोनों ही क्षेत्रों में कमज़ोरी रही।



बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी का नवीन संक्षिप्त रूप है



तालाब जल में जैव विविधताहका शाब्दिक अर्थ पारिस्थितिक के अंतर्गत उपयोग किये जाने वाले शब्द बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी का नवीन संक्षिप्त रूप है। बायोडाइवर्सिटी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बाल्टर जी. रोसेन ने सन 1986 में जंतुओं, पौधों और सूक्ष्म जीवों के विविध प्रकारों और इनमें विविधताओं के लिये किया

था।

जैव-विविधता से तात्पर्य समस्त जीवों जैसे-जंतुओं, पादपों और सूक्ष्म जीवों की जातियों की विपुलता है, जोकि किसी निश्चित आवास में पारस्परिक अंतःक्रियात्मक तंत्र की भाँति उत्पन्न होती है, वैज्ञानिकों के द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों के आधार पर

अनुमान लगाया गया कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर जीव-जंतुओं एवं पेड़-पौधों की लगभग पाँच से दस लाख प्रजातियाँ व्यवस्थित हैं, परंतु इनमें से लगभग दो लाख प्रजातियों की ही पहचान की जा सकी है तथा इनका अध्ययन किया गया है।

तालाब जल में विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं का



निर्धारण विभिन्न जीवों के अभिलक्षणों का परीक्षण एवं उनका तालाब-जल पर प्रभाव की समीक्षा करना है। सर्वोक्षित जिले में विकासखंडानुसार चयनित ग्रामीण क्षेत्रों के चयनित तालाबों में जैव-विविधता पाया गया। पहले की अपेक्षा तालाब जल में जैव-विविधता में ह्वास होने लगा है, क्योंकि तालाब में जल स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। इसी वजह से कई प्रकार के जलीय जीव की संख्या घटती जा रही है। जीव जन्तुओं का निवास: तालाब जल में अनेक प्रकार के जीव-जंतुओं का निवास होता है। इन जीव-जंतुओं

की उपयोगिता सिर्फ मानव के लिये न होकर एक पारिस्थितिक तंत्र के संदर्भ में होती है। तालाब जल में निवास करने वाले जीव-मछली, मेंढक, जोंक, केकड़ा, सर्प, कछुआ, घोंघा प्रमुख हैं। इनके अलावा, अनेक प्रकार के कीड़े-मकोड़े भी होते हैं। ये सभी जीव जलीय जीव होने के कारण जल में ही निवास करते हैं। तालाब जल में उपस्थित जीव-जंतुओं का निवास स्थान भी अलग-अलग जगहों में होता है। कई ऐसे जीव होते हैं, जो पूर्णतः जल में निवास करते हैं एवं कुछ ऐसे भी जीव होते हैं जो तालाब-जल के अंदर सील्ट मिट्टी या

कीचड़ में अपना बिल या खोल बनाकर निवास करते हैं। इन जीवों में मेंढक, सर्प, केकड़ा एवं मछलियाँ होते हैं। कुछ ऐसे भी जीव होते हैं, जो तालाब जल में उपस्थित प्राकृतिक वनस्पतियों पर अपना जीवन-यापन करते हैं, इनमें मुख्य रूप से कीड़े-मकोड़े होते हैं। तालाब-जल में प्रमुख जीव: तालाब जल में पाये जाने वाले जीव-जंतुओं की उपयोगिता सिर्फ मानव के लिये न होकर एक पारिस्थितिक तंत्र के संदर्भ में होती है। प्राथमिक उपभोक्ता के अंतर्गत समस्त शाकाहारी जन्तु आते हैं, जोकि अपने पोषण के लिये उत्पादकों पर निर्भर

रहते हैं। जल की सतह के नीचे उपस्थित जीवधारी नितलस्य कहलाते हैं। ये शाकाहारी जीवों के ऐसे समूह हैं, जोकि जीवित पौधों पर आश्रित होते हैं अथवा तालाब जल की तर्ती में उपस्थित मृत पादप अवशेषों पर जीवन निर्वहन करते हैं तथा डेट्रीवार्स कहलाते हैं। जन्तु-प्लवक ये तरैने वाले अथवा जल में बहने वाले जन्तुओं का समूह है। इसके अंतर्गत युग्लीना, सामान्यतया अस्ति आते हैं।

सायकलास आदि आत ह। द्वितीयक उपभोक्ता के अंतर्गत तालाब जल में उपस्थित मांसाहारी ऐसे जीव आते हैं, जोकि अपने पोषण के लिये प्राथमिक उपभोक्ताओं (शाकाहारी जीव) पर निर्भर रहते हैं। जलतीय कीट एवं मछलियाँ अधिकांश कीट, बीटलस हैं जो कि जनु प्लवकों पर आश्रित होते हैं। तृतीयक उपभोक्ता के अंतर्गत तालाब-जल की बड़ी मछलियाँ आती हैं, जोकि छोटी मछलियों का भक्षण करती हैं। इस प्रकार तालाब के पारिस्थितिक तंत्र में बड़ी मछलियाँ ही तृतीयक उपभोक्ता या सर्वोच्च मांसाहारी होती हैं। अपघटक इन्हें सूक्ष्म उपभोक्ता भी कहते हैं, क्योंकि इसके अंतर्गत ऐसे सूक्ष्म जीव आते हैं, जो मृत जीवों के कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करके उससे अपना पोषण प्राप्त करते हैं। इसके अंतर्गत जीवाणु एवं कवक जैसे- राइजोपस, पायथियम, सिफेलोस्पॉरियम, आदि समिलित किए गये हैं।

अध्ययन क्षेत्र के तालाब जल में विभिन्न प्रकार के जीव-जंतु हैं। इन जीवों में प्रमुख- मछली, मेंढक, केकड़ा, कछुआ, जोंक, सर्प, आदि का विवरण प्रस्तुत है। तालाब जल में उपलब्ध सभी जीवों में श्रेष्ठ माने जाने वाली मछली जो मानव जीवन के साथ ही साथ अन्य जीव धारियों के जीवन में उपयोगी पूर्ण मानी जाती है। ग्रामीणों से प्राप्त जानकारी के अनुसार तालाबों में पायी जाने वाली मछलियों के स्थानी नाम इस प्रकार हैं- रोहू, कतला, भुण्डी, मोंगरा, बाम, बामी, एवं कटरंग। जिनका प्रजाति के अनुसार सारणी 6.1 द्वारा व्यक्त कर वर्णन किया गया है।

तालाब जल की मछलियाँ: रायपुर जिले के तालाबों में विभिन्न प्रजातियों की मछलियाँ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध थी। स्वच्छ जल में मत्स्योद्योग के परिणामस्वरूप स्थानीय प्रजातियों की संख्या में पर्याप्त कमी हो गयी है। स्थानीय मछली की प्रजातियों का विवरण निम्नलिखित है:-

શાર્પરી (ઉદ્દિસર) :-ગોહુ (છેંડ્રાંડ્રિંદ) કરાયન્ત
(છ. ઉં'૨૪), કુર્સા (છ. ડ્રલ્વાંધર), પૌટિષ (છ.
ત્રેણ્ડ્રાંધર), કાતલા (ઉંદ'), મિરગલ (ડીંથ્રીલન
ટર્દ'), મહાસિર (ઇં' ૪૨દ્રાંધી) તથા અશલ્યક મીન
(ઉં'રીં').

प्रहान (हं^१झं^२झ४), पैसूडाट्रापिम गायू
 (दरीझं^१झं^२झ४), त्रॄंधी) , सिंधी
 (ठ४^१झ४स्ल्लीठ४शी२), मंगूरी (उं^१ल्लील्ल)
 सिंगहान (ट४^१झ४५२), मिरटर आव (टंझ४), मिस्टस
 टेंगरा (ट. व्हील्ल०१), मिस्टस केवेसियस (ट. पूंझ४२)
 , मिस्टस विटारस (ट. श३इं^१४२), ओमपैक
 बिमाकुलेट्स (डेस्ट्र छौं^१३४२), बोड (इंझ४१४२,
 इं४१२) सिलोद (रंझॄल्लं) तथा यूट्रोपिचिम
 (पा३७० न्हं^१३२)

(५०२८ रुपये) पंखवाली मछली (त्रिंशी टू'२) :पटला
 (ठड्डरुपसी१४२ ललड्डरुपसी१४२) तथा
 एनचितला (दुँ३')।

सर्वमीन (एरि): बाम (टैरूँडौं'३४२ १९३४२), बामी (ट. ढंल्लूं'४२), जरबामी (१९८८०ँ'३५१'), यहाँ पर सजीव मीन (छी रक्क्हो१)।

सौर (डस्टीब्रूस्कैंप'४२ टॅ१४'४२), भुंडा (डॅल्लूर३३४२), मुरैल (डर३३३४२), मंगुरा (उ'१२ टंल्लै११) तथा सिंधी (लू. त्रह्वर३'३)।

पर्चमीन (ढीशौर) :-

एनाबम टेस्टुडाइनियम, एम्बेसिम रंगा और बाम

छोटी शफरी एवं अन्य प्रजातियाँ

सम, कोटई, बीस्टिग्म, जरही कोटई, बरा, बोर्ड, सारंगी, सैवाकुल, सिल्हारी, मोहराटी डोनिकेनिसम, सूफा, बेडो, दंडवा, केवाई, सिंधी, केव, सारंगी, टेंगना, रूदवा, पाखिया, खोकसी, महराली, चिंगरी (झींगा) मिरकल, कोमलकार, कोतरी आदि हैं।

बड़ी शफरी प्रजाति की मछलियों में जो मछली प्रचुर मात्रा में मिलती है, वे कतला, बोर्ड, पढ़िन, सर्वमीन व सजीव मछलियाँ हैं। छोटी सफरी मछलियों में कोर्ट, जरही, चिलहारी तथा सारगंगी प्रमुख हैं। छोटे तालाबों

तथा बड़े जलाशयों के बाहरी छोरों में छोटी प्रजातियाँ
तथा पर्यावरणीय मछलियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। (जिला
गजेटियर पृ. 37 1956)।

तालाब जल में प्रमुख जीवों में मछली मुख्य है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था और मानव आहार में महत्वपूर्ण है। अध्ययन क्षेत्र में सवाधिक मछली पाये जाने वाले तालाब बलौदाबाजार, छुरा, देवभोग, धरसीकां, गरियाबंद, कसडोल, मैनपुर, विकासखंड अंतर्गत (48.37 प्रतिशत), आरग, अभनपुर, भाटापारा, बिलईगढ़ अंतर्गत (38.58 प्रतिशत) एवं पलतारी, राजिम, सिमगा, तिल्डा विकासखंड अंतर्गत (12.96 प्रतिशत) तालाबों में मछलियाँ पायी गयी।

अध्ययन क्षेत्र के तालाबों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पायी गई हैं, जिसे दो भागों में विभक्त कर विस्तृत वर्णन किया गया है।

विदेशी प्रजाति की मछली: इस प्रजाति के अंतर्गत 18 प्रकार की मछलियाँ होती हैं जो अध्ययन क्षेत्र के तालाब में पाये गये। इस प्रजाति की प्रमुख मछली- रोहू, कतला, कोमलकार, ए. ग्रेड, बी. ग्रेड, तेलपिया, सिंगाही, भुण्डा, सारंगी, गरनई, झींगा, मिरकल, मृगल, सिल्वर कार्प, कामन कार्प, ग्रास कार्प, मांगर आदि हैं।

स्थानीय प्रजाति की मछली:- इस प्रजाति की मछलियाँ की संख्या ९ प्रकार की हैं। मोरेरी, पढ़हिना, टेंगना, कोतरी, बाबर, खोकसी, गीनी, बांबी, रुदवा, आदि मछलियाँ चयनित तालाबों में पायी गयी।

कतला (डंड़ि)- इसका वैज्ञानिक नाम कतला है, यह बहुत तेजी से बढ़ती है। सामान्यतः यह वर्ष में 2 कि.ग्रा. बढ़ती है। इसका बाजार-मूल्य अधिक रहता है। इस मछली का सिर बड़ा शरीर तुर्क रूप, निचला जबड़ा ऊपर की ओर होता है। मछली का रंग पीछे की ओर गहरा भूरा, पार्श्व में रजत तथा पेट या उदर सफेद होता है। यह तालाब जल के ऊपरी सतह पर रहती है और भोजन में जू प्लाटन (झेझ्स्स'इल्ल) ग्रहण करती है। इस मछली के लिये पानी का तापमान 15 डिग्री से. से

40 डि. से. तक उपयुक्त होती है।
रोहू - इस मछली का वैज्ञानिक नाम लीबियो रोहिता (छ्वीझ़ फ़्रॉइ़) है। यह भी तेजी से बढ़ने वाली मछली है। इस मछली का शरीर लम्बा तथा पीछे की ओर संकरा होता है, ओठ मोटा एवं धब्बेदार होता है। यह

तालाब जल में उपस्थित फाइटोप्लाकटान (ढैंड़िझरीजिल्ल) नामक वनस्पति से अपना भोजन प्राप्त करता है। इसकी वृद्धि 20 डि. से. से अधिक तापक्रम पर अच्छी होती है।

मृगल: इस मछली का वैज्ञानिक नाम सिरहाना मृगला है। इसकी वृद्धि भी रोहू मछली की तरह होती है। इस मछली का शरीर रजत रंग का और पीछे की ओर गहरा भूरा होता है। इसके निचले जबड़े के केन्द्र पर छेटे ट्यूमर और ओठ के मोड़ पर छेटे वारबेलज के जोड़े होते हैं। यह तालाब की तली पर रहती है। यह भोजन के रूप में आरगैनिक पदार्थ तथा सड़े फ़ाइटोप्लास्टिक्टान वनस्पति ग्रहण करती है।

सल्वर कार्प: इसका वैज्ञानिक नाम सिल्वर कार्प है। इस मछली का शरीर तुर्क रूप मुख बड़ा, सिर मध्यम तथा निचला जबड़ा ऊपर की ओर थूथन कुन्द और गोलाकार होता है, पेट में श्रोट से ड्रेन्ट तक नुकीला उभार होता है। यह तालाब जल की ऊपरी सतह पर रहती है। भोजन में प्लेकटान नामक वनस्पति ग्रहण करती है। इस मछली के लिये 15 डि. से. से कम तापक्रम पर मछली के भूख में कमी होती है तथा 8 डि. से. कम तापमान पर भोजन लेना बंद कर देती है।

अतः सर्वोक्षित क्षेत्र के चयनित तालाब जल में पाई गई मछलियों की प्रजाति के अनुसार सारणी 6.1 में वर्गीकरण किया गया है।

तालाब जल में जैव विविधतासारणी 6.2 से स्पष्ट है कि तालाब-जल में पाये गये जीव-जंतुओं की संख्या विकासखंडनुसार प्रस्तुत है जिनमें मेढ़क 285 (100 प्रतिशत), केकड़ा 102 (35.79 प्रतिशत), कछुआ 44 (15.44 प्रतिशत), जोँक 108 (37.81 प्रतिशत) एवं सर्प 51 (17.89 प्रतिशत) पाये गये हैं।

मेढक - सभी सर्वेक्षित तालाब जल में मेढक हैं, ये भी जलीय जीव होने के कारण जल में निवास करते हैं। ये अपना जीवन-यापन जल में विभिन्न प्रकार के कीड़े मकोड़े का भक्षण कर करते हैं। साथ ही ये तालाब जल में उपस्थित अन्य जीव मछली सर्प आदि के लिये भोजन के रूप में उपयोगी होती है। अतः अध्ययन क्षेत्रों के चर्यानित सभी 285 तालाबों में मेढक पाये गये। इस तरह के एक भी तालाब नहीं है, जिसमें मेढक न हो?

केकड़ा: अध्ययन क्षेत्र में चयनित 285 तालाबों में से 120 (35.79 प्रतिशत) तालाबों में केकड़ा पाये गये। ये जीव पूर्णतः शाकाहारी होते हैं। ये तालाब की मेंढ़ (पान) में अमावस्यी त्वचाका विपाक करते हैं। वर्दीपान

(पर) न जेपना जाओ बनाकर नियास करो हा पत्रनाम में इसकी संख्या में हास हुई है, क्योंकि अन्य जीव भी इसे भोजन बनाकर अपना जीवन यापन करते हैं। अतः सर्वेक्षित जिले में विकासखंडनुसार सर्वाधिक केकड़ा पाए जाने वाले तालाबों की संख्या आरंग, अभन्नुर, बिलाईगढ़, छुरा, देवधोगे, गरियावंद, अंतर्गत 52 (18.24 प्रतिशत), बल्तौदाबाजार एवं भाटापारा अंतर्गत 27 (9.47 प्रतिशत) एवं पलतारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंडनुसार अंतर्गत 23 (8.07 प्रतिशत) पाये गये।

कछुआः 285 तालाबों में से 44 (15.44 प्रतिशत) तालाबों में कछुआ पाये गये। ये जीव तालाब-जल के अंदर कीचड़ (सिल्ट-मिट्टी) में बील बनाकर रहते हैं। भोजन के दौरान ये तालाब जल में विचरण करते हैं, ये जीव भी अपना भोजन तालाब जल से ही प्राप्त करते हैं। दिन प्रतिदिन इसकी संख्या घटती जा रही है, क्योंकि



ग्रामीण क्षेत्रों में निर्मित अधिकांश तालाब ग्रीष्मऋतु में पूर्णतः सूख जाते हैं एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लोग इसे भोजन के रूप में ग्रहण कर जाते हैं। इन सभी कारणों से इनकी संख्या में ह्रास हो रही है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों के चयनित तालाबों में कछुआ पाये जाने वाले तालाबों की सर्वाधिक संख्या, आरंग, बलौदाबाजार, देवभोग, कसडोल, मैनपुर, राजिम, तिल्दा अंतर्गत 25 (8.77 प्रतिशत), बिलाईगढ़, छुरा, धरसीवां, गरियाबंद, पलारी, अंतर्गत 13 (4.56 प्रतिशत) एवं न्यूनतम कछुआ वाले तालाब भाटापारा विकासखंड अंतर्गत 6 (2.10 प्रतिशत) तालाबों में कछुआ पाये गये।

जोंकः- चयनित 285 तालाबों में से 108 (37.18 प्रतिशत) तालाब जल में जोंक पाये गये हैं। ये तालाब जल के अंदर होती है तथा ये जलीय जीव होते हैं, इनका जीवन मछली की तरह होती है। इसकी शारीरिक संरचना, रबड़ की तरह मुलायम होती है। ये जीव पूर्णतः भोजन के लिये दूसरे जीवन पर आश्रित होते हैं। भोजन के रूप में यह रक्त ग्रहण करती है, इस कारण इसे रक्तहारी कहते हैं। तालाबों में जल के अभाव एवं अन्य जीव के भोजन के कारण इसकी संख्या में भी कमी आयी है।

अतः सर्वाधिक जोंक पायी गयी तालाबों की संख्या आरंग, अभनपुर, बिलाईगढ़, छुरा, धरसीवां, गरियाबंद, कसडोल, मैनपुर, तिल्दा अंतर्गत 71 (24.91 प्रतिशत) तालाब, बलौदाबाजार, देवभोग, पलारी, राजिम, सिमगा अंतर्गत 21 (7.37 प्रतिशत) तालाब एवं न्यूनतम जोंक वाले तालाब भाटापारा अंतर्गत 16

(5.61 प्रतिशत) पाये गये हैं।

तालाब में प्राकृतिक वनस्पति

अध्ययन क्षेत्र के चयनित तालाब में उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पतियों का वर्णन मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है।

(अ) तालाब की मेंड़ पर उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति: इसे मुख्य रूप से पुनः दो भागों में बांटा गया है।

(1) स्वतः उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति,

(2) मानव द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति।

(ब) तालाब जल में उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति।

(अ) तालाब की मेंड़ पर उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति:- तालाबों में प्राकृतिक वनस्पति स्वतः ही उगे होते हैं या फिर किसी व्यक्ति विशेष द्वारा तालाब के मेंड़ (पार) में उगाया गया जाता है। तालाब की मेंड़ों पर स्वतः उत्पन्न वृक्षों की संख्या नहीं के बराबर पाये गये, जितने भी वृक्ष पाये गये, ये सभी मानव द्वारा रोपित किये गये हैं। इन वृक्षों में प्रमुख - पीपल, बरगद, आम, नीम एवं बबुल आदि होते हैं।

अतः तालाबों में इन वृक्षों का विशेष महत्व होता है, साथ ही मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं में उपयोगी पूर्ण माना गया है। इन वृक्षों का अधिकांशतः धार्मिक कार्यों में उपयोग होता है। अतः चयनित तालाबों की मेंड़ में पाये गये वृक्षों को सारणी 6.3 द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 6.3 से स्पष्ट है कि तालाबों की मेंड़ पर पाये गये वृक्षों की संख्या विकासखंडानुसार व्यक्त किया गया है जिनमें आम 112 (39.30 प्रतिशत), पीपल 187

(65.61 प्रतिशत), बरगद 181 (63.50 प्रतिशत), नीम 51 (17.89 प्रतिशत) एवं अन्य वृक्षों की संख्या 173 (60.70 प्रतिशत) है, जिनमें सर्वाधिक वृक्षों में पीपल एवं न्यूनतम नीम वृक्षों की संख्या है।

आमः अध्ययन क्षेत्र के चयनित तालाबों में आम के वृक्ष पाये गये इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम मैगीफेरा इण्डिका एवं अंग्रेजी भाषा में मैगो के नाम से जाना जाता है। यह वृक्ष मानव जीवन के विभिन्न पक्षों में, जैसे अर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में उपयोगी होती है, साथ ही व्यावसायिक उष्टुकोण से भी इसका उपयोग अधिक है। इस वृक्ष से फल की प्राप्ति होती है, जो सभी प्रकार के फलों से श्रेष्ठ होता है, इसलिये इसे फलों का राजा भी कहा जाता है। स्वाद की वृष्टि से यह खुदा मीठा एवं रसयुक्त होता है। इस वृक्ष के सभी भाग उपयोगी होते हैं।

अतः सर्वाधिक आम के वृक्षों की संख्या आरंग, भाटापारा, बिलाईगढ़, देवभोग, गरियाबंद, मैनपुर अंतर्गत चयनित तालाबों में 46 (16.14 प्रतिशत) वृक्ष एवं अभनपुर, बलौदाबाजार, धरसीवां विकासखंड अंतर्गत 43 (15.09 प्रतिशत) वृक्ष एवं न्यूनतम छुरा, कसडोल, पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंड में इनकी संख्या 23 (8.07 प्रतिशत) पाये गये हैं।

तालाब जल में जैव विविधताबरगदः चयनित 285 तालाबों में बरगद वृक्षों की संख्या 181 (63.50 प्रतिशत) है। यह वृक्ष बहुत ही विशाल होता है। इसे कल्पवृक्ष या वटवृक्ष के नाम से भी जाना जाता है। लोग इस वृक्ष की पूजा पाठ भी करते हैं, अतः यह मानव के धार्मिक जीवन में उपयोगीपूर्ण होता है। इस वृक्ष की जड़ें

तालाब की मेंड़ की मिट्टी को बांध कर रखती है, जिसके कारण अपर्दन की क्रिया नहीं हो पाती है। साथ ही इसकी छाया घनी होने के कारण आरामदायक शीतलता प्रदान करती है। ये मानव जीवन के साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के जीवों के लिये भी उपयोगी हैं। इस वृक्ष में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें बिना पुष्प के फल लगते हैं जोकि अन्य जीवों के लिये उपयोगी होते हैं साथ ही इस वृक्ष से कुछ मात्रा में औषधियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो मानव जीवन के लिये अत्यंत उपयोगी हैं।

बरगद वृक्ष की सर्वाधिक संख्या आरंग, भाटापारा, बिलाईगढ़, धरसीवां, गरियाबंद, अंतर्गत चयनित तालाबों में 75 (26.31 प्रतिशत), अभनपुर, बलौदाबाजार, छुरा, विकासखंड अंतर्गत तालाबों में 58 (20.35 प्रतिशत) एवं न्यूनतम बरगद वृक्ष वाले तालाबों की संख्या देवभोग, कसडोल, मैनपुर, पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा अंतर्गत 48 (16.84 प्रतिशत) वृक्ष पाये गये हैं।

पीपल: तालाबों की मेंड़ पर अन्य वृक्षों की तरह पीपल भी पाये गये हैं। पीपल की संख्या 187 (65.61 प्रतिशत) है जो सभी वृक्षों से अधिक है। यह एक पवित्र वृक्ष माना जाता है। वैज्ञानिक वृष्टिकोण से यह वृक्ष 24 घण्टे दिन हो या रात ऑक्सीजन ही छोड़ते रहता है। इस गुण के अतिरिक्त इसकी छाया जाड़े में गर्मी देती है और ग्रीष्मऋतु में शीतलता प्रदान करती है। पीपल के पत्तों का सर्प्स होने पर वायु में मिले संक्रामक वायरल नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार इसकी छाल, पत्तों और फल आदि से अनेक प्रकार की रोगनाशक दवाईयां बनाई जाती हैं। जो मानव जीवन में उपयोगी पूर्ण होती हैं।

अत: पीपल वृक्ष की सर्वाधिक संख्या अभनपुर, बिलाईगढ़, देवभोग, धरसीवां, गरियाबंद, कसडोल, मैनपुर, पलारी अंतर्गत 104 (34.74 प्रतिशत) आरंग, बलौदाबाजार, भाटापारा अंतर्गत अध्ययनरत तालाबों में 66 (23.16 प्रतिशत) एवं न्यूनतम पीपल वृक्ष वाले तालाबों की संख्या छुरा, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंड अंतर्गत इन वृक्षों की संख्या 14 (7.71 प्रतिशत) है।

नीम: तालाबों की मेंड़ पर नीम वृक्ष भी पाये गये हैं। इन वृक्षों की संख्या सर्वेक्षित तालाबों में 51 (17.89 प्रतिशत) है, जोकि अन्य सभी वृक्षों की तुलना में कम है। यह वृक्ष अधिकांशतः तालाब जल के प्रदूषित करता है, साथ ही इसे मानव जीवन में औषधियों के रूप में उपयोगी पूर्ण माना जाता है। इस वृक्ष से बीज की प्राप्ति की जाती है जिससे तेल निकाला जाता है, जिनका उपयोग ग्रामीण जन जीवन में साबुन बनाने में तथा मच्छर कीट, आदि से सुरक्षा हेतु किया जाता है।

सर्वाधिक नीम वृक्ष वाले तालाबों की संख्या आरंग, बिलाईगढ़, गरियाबंद अंतर्गत 27 (9.47 प्रतिशत) अभनपुर, बलौदाबाजार, भाटापारा, छुरा में 15 (5.26 प्रतिशत) एवं न्यूनतम देवभोग, धरसीवां, कसडोल, मैनपुर, राजिम, तिल्दा अंतर्गत 9 (3.16 प्रतिशत) वृक्ष पाये गये हैं। सर्वेक्षित जिले के सिमगा, विकासखंड अंतर्गत चयनित दोनों ग्रामीण क्षेत्रों के चयनित 06 तालाबों में एक भी नीम वृक्ष नहीं पाया गया। अतः चयनित 285 तालाबों में से जिन तालाबों में नीम वृक्ष नहीं पाये गये, उनकी संख्या 234 (82.10 प्रतिशत)

होती है।

अन्य वृक्ष: तालाबों की मेंड़ पर आम, बरगद, पीपल एवं नीम वृक्ष की भाँति अन्य और भी वृक्ष पाये गये हैं। इन वृक्षों में बबूल, बेल, सेमल, करन, इमली एवं कुछ कटीली झाड़ियाँ प्रमुख हैं तालाबों में अन्य वृक्षों की संख्या 173 (60.35 प्रतिशत) है। इन वृक्षों का उपयोग मानव जीवन में मुख्य रूप से ईंधन के रूप में किया जाता है साथ ही कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं जैसे - बेल इसका उपयोग धार्मिक कार्यों, पूजा-पाठ में इसकी लकड़ी एवं पत्तों का इस्तेमाल किया जाता है। अन्य जीव-जन्तुओं के लिये यह महत्वपूर्ण होता है।

अन्य वृक्षों की संख्या बलौदाबाजार, भाटापारा, बिलाईगढ़, देवभोग, धरसीवां, गरियाबंद, मैनपुर अंतर्गत 117 (41.05 प्रतिशत) छुरा, कसडोल, पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंड में 31 (10.88 प्रतिशत) एवं न्यूनतम अन्य वृक्ष वाले तालाबों की संख्या आरंग, अभनपुर, विकासखंड अंतर्गत 25 (8.77 प्रतिशत) वृक्ष पाये गये हैं।

(ब) तालाब जल में उत्पन्न प्राकृतिक वनस्पति:- तालाब जल में विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। ये वनस्पतियाँ स्वतः ही उत्पन्न होती हैं। तालाब जल में पायी गयी वनस्पतियों में मुख्य रूप से काई, गाद, कमल, जलकुंभी एवं ढेंस, सिंधाडा प्रमुख हैं। ये सभी जलीय पौधे होते हैं, इनका जलीय पौधे होते हैं, इनका पूर्णतः जल पर निर्भर रहता है।

इन प्राकृतिक वनस्पतियों का अपना अलग ही परिस्थितिक तंत्र होता है। इसके अंतर्गत जैविक घटक (*इङ्गिस्ट्रॉब्स्ट्रॉब्लिल्लॉर्ल*) उत्पादक (*डैक्स्ट्रीशी१२*) आते हैं। तालाब जल में उपस्थित क्लोरोफिल युक्त पौधों एवं कुछ प्रकाशसंश्रेष्णी जीवाणुओं को रखा गया है। हरे पौधे एवं जीवाणु सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करके कार्बनिक पदार्थों जैसे कार्बोहाइड्रेट्स प्रोटीन (*डैक्स्ट्रीशी८१२*) एवं लिपिड्स (*छस्वरि*), आदि का निर्माण करते हैं।

तालाब जल में पाये जाने वाले उत्पादक को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है, पहला मेक्रोफायट्स (*टैक्सॉन्सै८३२*), इस श्रेणी में जड़ द्वारा भूमि से संलग्न जल में ढूबे हुए या सतह पर पत्तियाँ तैरते या आधे जल में तथा जल के ऊपर रहने वाले सभी प्रकार के जड़ वाले पौधे आते हैं। इस श्रेणी में कुछ पौधे जड़ होने के बावजूद स्वतंत्र रूप से भी तैरते हैं। इसका आकार बड़ा होने के कारण ही इन्हें मेक्रोफाइट्स कहते हैं। हाइड्रिला (*लैक्टिशि११*) जलकुंभी इसमें प्रमुख पौधा है।

दूसरी श्रेणी में पादप प्लवक (*डैक्स्ट्रॉब्स्ट्रॉलॉर्ल१३४८८८८८१२*) इसमें तैरने वाले (*ट्रैक्सॉल्लॉर्ल*) अथवा जलमग्न (*रेशैशी११*) निम्नवर्गीय सूक्ष्म पादप (*टैक्सॉन्सै८३१३१८११२३२*) आते हैं, इसके उदाहरण- शैवाल, काई एवं गाद हैं। अतः मानव-सभ्यता का विकास अवस्थानुसार वनस्पतियों के महत्व का मूल्यांकन विभिन्न रूपों में होता रहा है। तालाब-जल में प्राकृतिक वनस्पति का पारस्परिक जैविक संबंध है। इसी अंतरस्बध के कारण एक दूसरे का सह अस्तित्व है। प्रकृति में जीवन-संतुलन मानव एवं प्रकृति के योग से निश्चित है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तालाब-जल में उत्पन्न वनस्पतियों का उपयोग भी करते हैं। अतः तालाब-जल में पाये गये

प्राकृतिक वनस्पतियों को सारणी क्रमांक 6.4 में प्रस्तुत किया गया है। सारणी 6.4 से स्पष्ट है कि सर्वेक्षित जिले के अध्ययनरत क्षेत्रों के चयनित तालाब-जल में पायी गयी प्राकृतिक वनस्पतियाँ- काई 223 (78.24 प्रतिशत), गाद, 201 (70.53 प्रतिशत), कमल 101 (35.44 प्रतिशत), जलकुंभी 65 (22.81 प्रतिशत) हैं एवं प्राकृतिक वनस्पतियाँ वाली तालाबों की संख्या 188 (65.81 प्रतिशत) रहा है, जिनमें सर्वाधिक मात्रा काई की एवं न्यूनतम जलकुंभी का है। तालाब-जल में काई: तालाब जल में पायी जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति में काई प्रमुख है। चयनित कुल 285 तालाबों में से 223 (78.29 प्रतिशत) तालाब जल में काई पायी गयी। यह तालाब जल के अंदर उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक वनस्पति है, ये तालाब में निर्मित घाट (पचरी) के किनारे-किनारे जमी हुई होती है तथा जल के अंदर तैरती रहती है। ये रंग से हरा एवं चिकनेदार तथा स्पंज की भाँति होती है। ये तालाब को स्वच्छ रखती है। इनका उपयोग मानव जीवन में किसी प्रकार से उपयोगी पूर्ण नहीं है, बल्कि तालाब जल में अन्य जीव जैसे मछलियाँ भोजन के रूप में इसे ग्रहण करती हैं। काई की मात्रा जिन तालाबों में आधिकारिक होती है, उन तालाब-जल का उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाता है, क्योंकि इसमें चिकनेपन होने के कारण फिसलन अधिक होती है।

अतः तालाब जल में सर्वाधिक काई की मात्रा आरंग, बलौदाबाजार, बिलाईगढ़, छुरा, देवभोग, धरसीवां, गरियाबंद, कसडोल, मैनपुर, पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा अंतर्गत 149 (52.28 प्रतिशत) अभनपुर, भाटापारा में 45 (15.79 प्रतिशत) एवं न्यूनतम काई वाले तालाबों की संख्या पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा में 29 (10.17 प्रतिशत) पाये गये एवं जिन तालाब जल में काई की मात्रा नहीं पायी गयी उनकी संख्या 62 (21.7 प्रतिशत) रही है।

गाद: तालाब जल में पाये जाने वाली वनस्पति में गाद भी प्रमुख है। चयनित कुल तालाबों में से 201 (70.53 प्रतिशत) तालाब जल में गाद पायी गयी है। यह भी जल के अंदर उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक वनस्पति है। ये पूर्णतः तालाब जल में तैरते रहती हैं तथा तालाबों के किनारे वाले भागों में अधिक मात्रा में होते हैं ये वनस्पति तालाब जल को पूर्णतः प्रदूषण रहित कर जाती है। इनका भी प्रत्यक्ष उपयोग मानव जीवन में नहीं होता है, ये तालाब के जीव जन्तुओं के लिये उपयोगी पूर्ण होती है। अतः अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक गाद पाये जाने वाले तालाबों की संख्या आरंग, अभनपुर, भाटापारा, छुरा, धरसीवां, गरियाबंद, मैनपुर, विकासखंड अंतर्गत 120 (42.10 प्रतिशत) बलौदाबाजार, बिलाईगढ़, देवभोग, कसडोल, अंतर्गत 71 (24.91 प्रतिशत) एवं न्यूनतम राजिम, सिमगा, विकासखंड अंतर्गत गाद वाले तालाबों की संख्या 10 (3.51 प्रतिशत) पाये गये हैं एवं जिन तालाब जल में गाद की मात्रा नहीं पायी गयी, उनकी संख्या 84 (24.97 प्रतिशत) रही है।

कमल - तालाब जल में पायी जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति में कमल भी है। चयनित 285 तालाबों में से कमल पाये जाने वाले तालाबों की संख्या 101 (35.44 प्रतिशत) रही है। यह वनस्पति मुख्य रूप से तालाब जल के अंदर सील्ट (कीचड़) में उत्पन्न होती है। इनका उपयोग ग्रामीण जन-जीवन में अनेक प्रकार



से किया जाता है, साथ ही मानव के धार्मिक कार्यों में भी उपयोगीपूर्ण होती है। इसकी पत्ती चौड़ी होने के कारण तालाब जल को ढंकर रखती है। इसमें पुष्प सफेद तथा लाल रंगों में खिलते हैं एवं इससे कंदमूल की प्रसिद्धि होती है, जो भोज्य पदार्थ के रूप में मानव के साथ ही साथ अन्य जीव धारियों के जीवन में महत्वपूर्ण होती है। जिन तालाबों में इसकी संख्या अत्यधिक हो जाती है तो तालाब जल प्रदूषण रहित भी हो जाते हैं। तालाब जल को प्रदूषण इसके चौड़ी पत्ते के सड़ने गलने से होती है। अतः ये प्राकृतिक वनस्पति उपयोगी होने के साथ ही साथ अनुपयोगी पूर्ण भी होती है।

अतः चयनित तालाब जल में सर्वाधिक कमल पाये जाने वाली तालाब की संख्या, आरंग, अभनपुर, भाटापारा, छुरा अंतर्गत 44 (15.44 प्रतिशत) बलौदाबाजार, गरियाबद, कसडोल, मैनपुर, पलारी, तिल्दा विकासखंड अंतर्गत 37 (12.98 प्रतिशत) भाटापारा छुरा, धरसीबा अंतर्गत तालाब की संख्या 23 (8.07 प्रतिशत) एवं न्यूनतम बिलाईगढ़, देवभोग, धरसीबां, पलारी, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंड अंतर्गत चयनित ग्रामों में तालाब की संख्या 23 (8.07 प्रतिशत) अध्ययन पश्चात पाया गया। साथ ही जिन तालाबों में कमल नहीं पाया गया उनकी संख्या 184 (64.59 प्रतिशत) रहा है।

जलकुंभी - सर्वेक्षित जिले में विकासखंडानुसार चयनित ग्रामीण क्षेत्रों में चयनित तालाब-जल में जलकुंभी भी उपलब्ध है चयनित 285 तालाब में से 65 (22.81 प्रतिशत) तालाब जल में जलकुंभी पाया गया है। ये वनस्पति पूर्णतः जलीय होने के कारण तालाब जल में तैरते रहते हैं इनका मानव जीवन में किसी भी प्रकार से उपयोग नहीं किया जाता है, साथ तालाब-जल में इसकी मात्रा अधिक होने से जल प्रदूषण रहित हो जाता है।

चयनित तालाब जल में इनकी संख्या विकासखंडानुसार सर्वाधिक जलकुंभी वनस्पति वाले तालाब की संख्या आरंग, अभनपुर, बिलाईगढ़, देवभोग, गरियाबद, कसडोल, मैनपुर, पलारी, तिल्दा विकासखंड अंतर्गत 37 (12.98 प्रतिशत) भाटापारा छुरा, धरसीबा अंतर्गत तालाब की संख्या 23 (8.07 प्रतिशत) एवं न्यूनतम बलौदाबाजार, राजिम, सिमगा विकासखंड अंतर्गत तालाब की संख्या 5 (1.75 प्रतिशत) रहा है। साथ ही जिन तालाब में इस प्रकार की वनस्पति नहीं पायी गयी उन तालाबों की संख्या 220 (77.19 प्रतिशत) है।

तालाब जल में अन्य प्राकृतिक वनस्पति: चयनित

तालाब के जल में उपलब्ध वनस्पति जैसे काई, गाद, कमल, जलकुंभी के अतिरिक्त और भी अनेकों प्रकार के प्राकृतिक वनस्पतियाँ पायी गयी हैं। इन वनस्पतियों में कुछ मानव के लिये महत्वपूर्ण होती है जैसे- डेस, सिंघाड़ा, इसे भोज्य पदार्थ के रूप में ग्रहण की जाती है ये भी तालाब जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ होती हैं तथा कुछ और भी वनस्पतियाँ होती हैं जो किसी भी प्रकार से उपयोगी पूर्ण नहीं होती। चयनित 285 तालाब में से अन्य प्रकार के वनस्पति वाले तालाब की संख्या 188 (65.96 प्रतिशत) पाया गया है।

अन्य वनस्पति वाले तालाबों की संख्या विकासखंडानुसार देखा जाये तो सर्वाधिक संख्या, अभनपुर, बिलाईगढ़, छुरा, देवभोग, धरसीबा, मैनपुर, पलारी, अंतर्गत तालाबों की संख्या 96 (33.68 प्रतिशत), आरंग, भाटापारा में इनकी संख्या 45 (15.79 प्रतिशत) एवं बलौदाबाजार, गरियाबद, कसडोल, राजिम, सिमगा, तिल्दा विकासखंड अंतर्गत तालाबों की संख्या 47 (16.49 प्रतिशत) पाया गया तथा जिन तालाब-जल में अन्य प्रकार के प्राकृतिक वनस्पति नहीं पायी गई उन तालाबों की संख्या 97 (34.03 प्रतिशत) है।

औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात करते हैं



प्राकृतिक संसाधनों को संसाधित कर के अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं में बदलना विनिर्माण कहलाता है। ये विनिर्मित वस्तुएँ कच्चे माल से तैयार की जाती हैं। विनिर्माण उद्योग में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल या तो अपने प्राकृतिक स्वरूप में सीधे उपयोग में ले लिये जाते हैं जैसे कपास, ऊन, लौह अयस्क इत्यादि अथवा अर्द्ध-संसाधित स्वरूप में जैसे धागा, कच्चा लोहा आदि जिन्हें उद्योग में प्रयुक्त कर के और अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं के रूप में बदला जाता है। अतः किसी विनिर्माण उद्योग से विनिर्मित वस्तुएँ दूसरे विनिर्माण उद्योग के लिये कच्चे माल का कार्य करती हैं। अब यह सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी देश की आर्थिक-प्रगति या विकास उसके अपने उद्योगों के विकास के बिना संभव नहीं है।

औद्योगिक विकास के स्तर का किसी देश की आर्थिक सम्पन्नता से सीधा सम्बन्ध है। विकसित देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, रूस की आर्थिक सम्पन्नता इन देशों की औद्योगिक इकाइयों की प्रोन्नति

एवं उच्च विकासयुक्त वृद्धि से जुड़ा है। औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात करते हैं तथा विनिर्मित वस्तुओं को अधिक मूल्य चुकाकर आयात करते हैं। इसीलिये आर्थिक रूप से ये देश पिछड़े बने रहते हैं।

भारत में विनिर्माण उद्योग का सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 30% का योगदान है। इन औद्योगिक इकाइयों द्वारा करीब 280 लाख लोगों को रोजगार उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्माण उद्योग राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के प्रमुख स्रोत हैं।

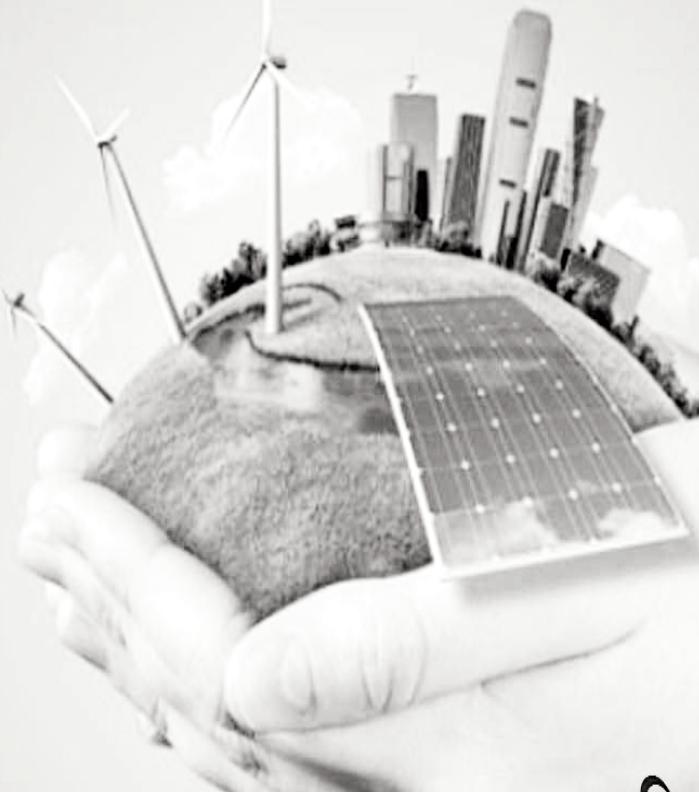
इस पाठ के अन्तर्गत हम भारत में विकसित विभिन्न प्रकार के निर्माण उद्योग, उनके वर्गीकरण तथा उनके क्षेत्रीय वितरण कर अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- भारत में विनिर्माण उद्योगों के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे;

- हमारे देश के आर्थिक विकास एवं प्रगति में इन औद्योगिक इकाइयों के योगदान को समझ सकेंगे;
- उद्योगों का विभिन्न लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे;
- औद्योगिक विकास का सम्बन्ध कृषि, खनिज तथा ऊर्जा के साथ स्थापित कर सकेंगे;
- उद्योगों के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले कारकों का परीक्षण कर सकेंगे;
- कुछ प्रमुख कृषि-आधारित उद्योगों तथा खनिज आधारित उद्योगों के स्थानिक वितरण का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के मानचित्र पर कुछ चुने हुए उद्योगों की अवस्थाओं को दर्शा सकेंगे और उनकी पहचान कर सकेंगे;
- भारत में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिये बनाई गई विभिन्न नीतियों के योगदान को समझा सकेंगे;
- औद्योगिक विकास और क्षेत्रीय विकास के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे;



गैर परम्परागत ऊर्जा श्रोत

- स्थान-विशेष पर स्थापित उद्योगों के विकास एवं बुद्धि पर आर्थिक उदारीकरण के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- औद्योगिक विकास के पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

24.1 आधुनिक उद्योगों का संक्षिप्त इतिहास

भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास का प्रारंभ मुंबई में प्रथम सूती कपड़े की मिल की स्थापना (1854) से हुआ। इस कारखाने की स्थापना में भारतीय पूँजी तथा भारतीय प्रबंधन ही मुख्य था। जूट उद्योग का प्रारंभ 1855 में कोलकाता के समीप हुगली घाटी में जूट मिल की स्थापना से हुआ जिसमें पूँजी एवं प्रबंध-नियन्त्रण दोनों विदेशी थे। कोयला खनन उद्योग सर्वप्रथम रानीगंज (पश्चिम बंगाल) में 1772 में शुरू हुआ। प्रथम रेलगाड़ी का प्रारंभ 1854 में हुआ। टाटा लौह-इस्पात कारखाना जमशेदपुर (झारखण्ड राज्य) में सन 1907 में स्थापित किया गया। इनके बाद कई मश्नले तथा छोटी औद्योगिक इकाइयों जैसे सीमेन्ट, कांच, साबुन, रसायन, जूट, चीनी तथा कागज इत्यादि की स्थापना की गई। स्वतंत्रता पूर्व औद्योगिक उत्पादन न तो पर्याप्त थे और न ही उनमें विभिन्नता थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की अर्थव्यवस्था अविकसित थी, जिसमें कृषि का योगदान भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 60% से अधिक था तथा देश

की अधिकांश निर्यात से आय कृषि से ही थी। स्वतंत्रता के 60 वर्षों के बाद भारत ने अब अग्रणी आर्थिक शक्ति बनने के सकेत दिए हैं।

भारत में औद्योगिक विकास को दो चरणों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम चरण (1947-80) के दौरान सरकार ने क्रमिक रूप से अपना नियन्त्रण विभिन्न आर्थिक-क्षेत्रों पर बढ़ाया। द्वितीय चरण (1980-97) में विभिन्न उपायों द्वारा (1980-1992 के बीच) अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लाया गया। इन उपायों द्वारा उदारीकरण तात्कालिक एवं अस्थाई रूप से किया गया था। अतः 1992 के पश्चात उदारीकरण की प्रक्रिया पर जोर दिया गया तथा उपायों की प्रकृति में मौलिक भिन्नता भी लाई गई।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में व्यवस्थित रूप से विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक योजनाओं को समाहित करते हुए कार्यान्वित किया गया और परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में भारी और मध्यम प्रकार की औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की गई। देश की औद्योगिक विकास नीति में अधिक ध्यान देश में व्यापक क्षेत्रीय असमानता एवं असंतुलन को हटाने में केन्द्रित किया गया था और विविधता को भी स्थान दिया गया। औद्योगिक विकास में आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लिये भारतीय लोगों की क्षमता को प्रोत्साहित कर

विकसित किया गया। इन्हीं सब प्रयासों के कारण भारत आज विनिर्माण के क्षेत्र में विकास कर पाया है। आज हम बहुत सी औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात विभिन्न देशों को करते हैं।

पाठगत प्रश्न 24.1

- कब और किस जगह कोयले का उत्खनन सर्वप्रथम शुरू हुआ?
- भारत में किस वर्ष में रेलगाड़ी का प्रारंभ हुआ?
- टाटा लौह और इस्पात संयंत्र किस जगह स्थापित किया गया था?

24.2 उद्योगों का वर्गीकरण

विभिन्न लक्षणों के आधार पर उद्योगों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। किन्तु निम्न सारिणी में उद्योगों को 5 प्रमुख आधारों पर वर्गीकृत किया गया है—सारिणी 24.1 उद्योगों का वर्गीकरण

क्रम

आधार
उद्योगों के प्रकार
प्रमुख विशेषताएँ
उदाहरण

- कच्चे माल के स्रोत के आधार पर



(५) कृषि-आधारित उद्योग

कृषि-उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करना सूती-वस्त्र उद्योग, जूट या पटसन उद्योग, चीनी (शक्कर) उद्योग एवं कागज उद्योग

(६) खनिज आधारित उद्योग

खनिजों का कच्चे माल के रूप में उपयोग करना लोहा और इस्पात, रसायन एवं सीमेंट उद्योग

2.

स्वामित्व (के आधार पर)

(७) सार्वजनिक क्षेत्र

(८) निजी-क्षेत्र

(९) संयुक्त क्षेत्र

(१०) सहकारी क्षेत्र

स्वामित्व नियंत्रण एवं प्रबंधन सरकार द्वारा

स्वामित्व, नियंत्रण एवं प्रबंधन किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा कम्पनी के रूप में

संयुक्त रूप से सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र स्वामित्व कच्चे माल के उत्पादकों द्वारा सहकारी समिति बनाकर स्थापित उद्योग

बोकारो लोहा एवं इस्पात संयंत्र, चितरंजन लोकोमोटिव टाटा-लोहा एवं इस्पात संयंत्र, जे-के-सीमेंट, अपोलो टार्यास-

मारुति उद्योग

महाराष्ट्र के चीनी उद्योग, "अमूल" (गुजरात) और "इफको" (काँडला)

3.

प्रमुख कार्य अथवा योगदान के आधार पर

(१) आधारभूत उद्योग

(२) उपभोक्ता उद्योग

आधारभूत उद्योगों के द्वारा विनिर्मित उत्पादों का दूसरे अन्य उद्योगों द्वारा कच्चे माल के रूप में उपयोग करना इन उद्योगों द्वारा निर्मित उत्पादों का सीधे उपभोक्ताओं द्वारा उपयोग में लाया जाना लोहा और इस्पात उद्योग, पेट्रो-रसायन उद्योग टूथपेस्ट, साबुन, चीनी उद्योग

4.

उद्योग के आकार के आधार पर

(१) बड़े पैमाने के उद्योग

(२) छोटे-पैमाने के उद्योग

(३) ग्रामीण एवं कूटीर उद्योग

अधिक पूँजी निवेश, भारी मशीनरी, कारीगरों की अधिक संख्या, विशाल संयंत्र 24 घंटे अनवरत कार्य कम पूँजी निवेश, छोटे स्तर के संयंत्र, कारीगरों एवं कार्यशील मजदूरों की थोड़ी संख्या

परिवार के सदस्यों का स्वामित्व, छोटी मशीनें जिन्हें घर पर ही संचालित किया जा सके-

लोहा और इस्पात उद्योग, तेल-शोधक संयंत्र

साइकिल उद्योग, बिजली सामान बनाने वाले उद्योग

आभूषण निर्माण, हस्तशिल्प, दस्तकारी कलात्मक वस्तुएँ

5.

कच्चे माल तथा तैयार माल के भार के आधार पर

(१) भारी उद्योग

(२) हल्के उद्योग

कच्चे माल तथा विनिर्मित माल दोनों भारी-भरकम तथा आकार में बड़े परिवहन में काफी लागत

कच्चे माल तथा उत्पाद दोनों वजन में हल्के, परिवहन में कम लागत

लोहा एवं इस्पात भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड, (हरिद्वार जेनरेटर जैसे भारी बिजली उत्पाद

घड़ियाँ, सिले-सिलाए वस्त्र निर्माण, खिलौने, फाउन्टेन पेन उद्योग

यह आवश्यक नहीं कि कोई एक उद्योग एक ही श्रेणी में शामिल होता हो। वर्गीकरण के आधार पर एक ही उद्योग विभिन्न प्रकार के उद्योगों का उदाहरण बन सकता है। उदाहरण के तौर पर बोकारो लोहा एवं इस्पात संयंत्र खनिज आधारित उद्योग है, जो सार्वजनिक क्षेत्र का भी उद्योग है तथा एक आधारभूत उद्योग है, यह बड़े

पैमाने का उद्योग है तथा यह भारी उद्योग का भी उदाहरण है।

पाठगत प्रश्न 24.2

1. निम्नलिखित में से कौन-सा उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आता है?

(क) जे.के. सीमेंट उद्योग

(ख) टाटा लौह एवं इस्पात संयंत्र

(ग) बोकारो लौह एवं इस्पात संयंत्र

(घ) रेमण्ड कृत्रिम वस्त्र उद्योग

2. निम्नलिखित में से कौन सा उपभोक्ता उद्योग है?

(क) पेट्रो-रसायन

(ख) लोहा एवं इस्पात

(ग) चितरंजन लोकोमोटिव

(घ) चीनी उद्योग

3. निम्नलिखित में से कौन सा छोटे पैमाने का उद्योग है?

(क) चीनी

(ख) कागज

(ग) कपास

(घ) बिजली के पंखे

4. उन पाँच आधारों के नाम बताइए जिन पर उद्योगों को बोर्डीकृत किया जा सकता है?

24.3 कृषि आधारित उद्योग

वस्त्र, चीनी, कागज एवं वनस्पति तेल उद्योग इत्यादि कृषि उपज पर आधारित उद्योग हैं। ये उद्योग कृषि उत्पादों को अपने कच्चे माल के रूप में प्रयोग करते हैं। संगठित औद्योगिक क्षेत्र में वस्त्र उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। इसके अन्तर्गत (१) सूती वस्त्र (२) ऊनी वस्त्र (३) रेशमी वस्त्र (५) कृत्रिम रेशे वाले वस्त्र (५) जूट उद्योग आते हैं। कपड़ा उद्योग औद्योगिक क्षेत्र का सबसे बड़ा घटक है। कुल औद्योगिक उत्पाद का पाँचवा हिस्सा वस्त्र उद्योग उत्पादन का है तथा विदेशी मुद्रा अज्ञन में इसका एक तिहाई योगदान है। रोजगार उपलब्ध कराने में कृषि क्षेत्र के बाद इसी का स्थान है।

(क) सूती कपड़ा उद्योग

भारत में औद्योगिक विकास का प्रारंभ 1854 में मुम्बई में आधुनिक सूती वस्त्र कारखाने की स्थापना से हुआ। और तब से यह उद्योग उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कर रहा है। वर्ष 1952 में इसकी कुल 378 औद्योगिक इकाइयाँ थीं जो मार्च 1998 में बढ़कर 1998 हो गई।

भारत की अर्थव्यवस्था में कपड़ा उद्योग का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। यह बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है। देश की कुल औद्योगिक श्रमिक संख्या का 1/5 वाँ हिस्सा कपड़ा उद्योग क्षेत्र में लगा हुआ है।

(१) उत्पादन

वस्त्र निर्माण उद्योग के तीन क्षेत्र हैं। (१) कपड़ा मिल क्षेत्र (२) हैंडलूम (हथकरघा) एवं (३) पावरलूम। सन 1998-99 में कुल सूती वस्त्र उत्पादन में बड़े कारखानों, हैंडलूम तथा पावरलूम का भाग क्रमशः:

5.4 प्रतिशत, 20-6 प्रतिशत एवं 74 प्रतिशत था। सन 1950-51 में सूती वस्त्रों का उत्पादन 421 करोड़ वर्ग मीटर था जो 1998-99 में बढ़कर 1794.9 करोड़ वर्गमीटर तक पहुँच गया।

सूती धागे एवं कृत्रिम धागों पर आधारित वस्त्र उद्योग ने जबरदस्त उन्नति की है। दोनों प्रकार के धागों से निर्मित कपड़े की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1960-61 में केवल



15 मीटर थी। 1995-96 में यह बढ़कर 28 मीटर प्रति वर्षित हो गयी। परिणामस्वरूप सूती धारों का सूती वस्त्रों एवं कृतिमधारों से निर्मित वस्त्रों का बड़े पैमाने पर निर्यात होने लगा। इनके निर्यात से हमने सन 1995-96 में 2.6 अरब डॉलर की विदेशी मुद्रा अर्जित की।

(५) वितरण - सूती वस्त्र उद्योग देश के सभी भागों में फैला हुआ है। इस उद्योग के कारखाने भारत के विभिन्न भागों में 88 से अधिक केन्द्रों में अवस्थित हैं। परन्तु अधिकतर सूती वस्त्रों के कारखाने आज भी उन क्षेत्रों में ही हैं जहाँ कपास का उत्पादन प्रमुख रूप से किया जाता है। ये क्षेत्र उत्तरी भारत के विशाल मैदानी क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीपीय पठारी भागों में स्थित हैं।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्रमहाराष्ट्र राज्य सूती वस्त्र उत्पादन में हमारे देश का अग्रणी राज्य है। मुम्बई सूती कपड़ों के कारखानों का प्रमुख केन्द्र है। क्योंकि लगभग आधे सूती कपड़े निर्माण करने वाले कारखाने मुम्बई में स्थित हैं। इसीलिये मुम्बई को कॉटन पोलिस ठीक ही कहा गया है।

शोलापुर, कोल्हापुर, नागपुर, पुणे, औरंगाबाद एवं जलगांव इत्यादि शहर भी महाराष्ट्र राज्य के सूती कपड़े निर्माण के महत्वपूर्ण स्थान हैं।

सूती वस्त्र उत्पादन में गुजरात का देश में दूसरा स्थान है। अहमदाबाद इस राज्य का प्रमुख केन्द्र है। इसके अलावा सूरत, भड़ोच, वडोदरा, भावनगर एवं राजकोट राज्य के अन्य केन्द्र हैं।

तमिलनाडु दक्षिण भारत में सूती वस्त्र उत्पादन में एक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में उभरा है। कोयम्बटूर इस राज्य का सबसे महत्वपूर्ण सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्र है। इसके अलावा तिरुनलवेली, चेन्नई, मदुरई, तिरुचनापल्ली, सालेम एवं तंजौर राज्य के अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र हैं।

कर्नाटक राज्य में सूती वस्त्र उद्योग बंगलुरु, मैसूर, बेलगाम और गुलबर्गा नगरों में केन्द्रित है। उत्तर प्रदेश

में सूती वस्त्र उद्योग कानपुर, इटावा, मोदीनगर, वाराणसी, हाथरस शहरों में केन्द्रित हैं। मध्य प्रदेश में सूती वस्त्र उद्योग इंदौर और ग्वालियर शहरों में केन्द्रित है। पश्चिम बंगाल के अंतर्गत हावड़ा, सेरामपुर, मुर्शिदाबाद जैसे बड़े शहरों में सूती वस्त्र उद्योग स्थित हैं।

इसके अलावा राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और आंध्र प्रदेश राज्य भी सूती वस्त्र उत्पादन में योगदान देते हैं। अहमदाबाद-मुम्बई-पुणे क्षेत्र में सूती वस्त्र उद्योगों के संकेन्द्रित होने के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:

1. कच्चे माल की उपलब्धता - इस क्षेत्र में कपास का उत्पादन काफी मात्रा में किया जाता है।
 2. पूँजी की उपलब्धता - पूँजी निवेश के लिये मुम्बई, पुणे, अहमदाबाद ऐसे स्थान हैं जहाँ आसानी से उद्योग में पूँजी लगाने की सुविधा उपलब्ध है।
 3. परिवहन के साधन - यह क्षेत्र देश के अन्य भागों से सड़क और रेलमार्ग द्वारा अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। अतः उत्पादित वस्तुओं का परिवहन आसान है।
 4. बाजार की निकटता - वस्त्र उत्पादों को बेचने के लिये महाराष्ट्र और गुजरात में बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। विकसित परिवहन के साधनों द्वारा वस्त्र उत्पादों को देश के अन्य बाजारों एवं विदेशी बाजारों तक भेजने में आसानी रहती है। आजकल सूती वस्त्र उद्योग के संकेन्द्रण के लिये बाजार एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है।
 5. पत्तनों की निकटता - मुम्बई पत्तन द्वारा विदेशों से मशीनरी तथा अच्छी किस्म की कपास को आयात करने और तैयार माल को निर्यात करने में आसानी रहती है।
 6. सस्ते श्रमिक - सस्ते एवं कुशल श्रमिक आस-पास के क्षेत्रों से आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।
 7. ऊर्जा की उपलब्धता - यहाँ सस्ती एवं पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा आसानी से उपलब्ध हो जाती है।
- (ख) चीनी उद्योग

भारत के कृषि आधारित उद्योगों में चीनी उद्योग का दूसरा स्थान है। अगर हमगुड़, खांडसारी और चीनी तीनों के उत्पादन को जोड़कर देखें तो भारत विश्व में चीनी उत्पादों का सबसे बड़ा उत्पादक बन जाएगा। सन 2003 में हमारे देश में लगभग 453 चीनी के कारखाने थे। इस उद्योग में लगभग 2.5 लाख लोग लगे हुए हैं।

(६) उत्पादन

चीनी उत्पादन का सीधा सम्बन्ध गन्ने के उत्पादन से है। चीनी के उत्पादन में उत्तर-चढ़ाव गन्ने के उत्पादन के उत्तर-चढ़ाव पर निर्भर करता है। सन 1950-51 में चीनी का कुल उत्पादन 11.3 लाख टन था। 2002-2003 में यह बढ़कर 201.32 लाख टन हो गया। परन्तु 2003-2004 में यह घटकर 138 लाख टन रह गया।

(७) वितरण - चीनी के अधिकांश कारखाने छ: राज्यों में ही संकेन्द्रित हैं। ये राज्य हैं-उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश। उत्तर प्रदेश - चीनी उत्पादन में उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर चीनी के कारखाने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद और बुलन्दशहर जिलों में संकेन्द्रित हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में देवरिया, बस्ती, गोंडा और गोरखपुर जिले चीनी उद्योग के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। उत्तर प्रदेश में गन्ने की कृषि के अंतर्गत सबसे अधिक क्षेत्र है। लेकिन यह राज्य 2003-2004 में भारत के कुल चीनी उत्पादन का केवल एक-तिहाई भाग का ही उत्पादन कर सका। यहाँ पर गन्ने का प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है और गन्ने में चीनी का अंश भी कम है। महाराष्ट्र - भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में महाराष्ट्र एक महत्वपूर्ण चीनी उत्पादक राज्य है। यहाँ चीनी का उत्पादन देश के सकल उत्पादन के एक चौथाई अंश के बराबर होता है। महाराष्ट्र राज्य में चीनी उत्पादन के

प्रमुख केन्द्र नासिक, पुणे, सतारा, सांगली, कोल्हापुर और शोलापुर हैं।

आन्ध्र प्रदेश - पूर्वी एवं पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम, निजामाबाद, मेडक एवं चित्तूर जिले इस राज्य के चीनी उत्पादन के केन्द्र हैं।

तमिलनाडु - इस राज्य के उत्तरी तथा दक्षिणी आरकोट, मदुरई, कोयम्बटूर और तिचारपल्ली चीनी-उत्पादन के महत्वपूर्ण जिले हैं।

कर्नाटक - यह भी एक महत्वपूर्ण चीनी उत्पादक राज्य है। इस राज्य के बेलगाम, मान्ड्या, बीजापुर, बेलारी, शिमोगा तथा चित्रदुर्ग जिले चीनी उत्पादन के लिये महत्वपूर्ण हैं।

बिहार, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान अन्य राज्य हैं जहाँ चीनी मिले अवस्थित हैं।

चीनी-उद्योग के स्थानीयकरण के निम्नलिखित कारक हैं-

(1) चीनी निर्माण में गन्ना ही प्रमुख कच्चामाल होता है। अतः चीनी मिलों की स्थापना गन्ना-उत्पादन क्षेत्र में ही हो सकती है। गन्ने की फसल कटने के बाद ना तो गोदामों में रखी जा सकती है और न ही उसे कटने के बाद खेत में अधिक समय तक छोड़ा जा सकता है क्योंकि वे जलदी से सूखने लगते हैं। इसलिये फसलों की कटाई के बाद गन्नों को तुरन्त चीनी मिलों को भेजना आवश्यक है।

(2) गन्नों का परिवहन भी महँगा होता है। आमतौर पर गन्नों को बैलगाड़ियों में लादकर समीपस्थ चीनी मिल को भेजा जाता है। इनसे सामान्यतः 25-30 कि. मी. तक की दूरी तय की जा सकती है। अब गन्नों को चीनी मिल तक पहुँचाने के लिये ट्रैक्टर ट्रॉली और ट्रॉकों का प्रयोग भी किया जाने लगा है। इन उपरोक्त दो कारकों के अलावा पूँजी की उपलब्धि, विपणन की सुविधा, सहज और सस्ते मजदूरों का मिलना और सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा की उपलब्धता इत्यादि कारक हैं जो चीनी-मिलों के स्थानीयकरण को प्रभावित एवं नियन्त्रित करते हैं।

उत्तरी भारत के क्षेत्रों से चीनी उद्योग के भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में स्थानांतरित होने के कारण

पिछले कुछ समय से चीनी उद्योग का क्रमिक रूप से धीरे-धीरे उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों से हटकर भारतीय प्रायद्वीप के राज्यों में हस्तांतरण हो रहा है। इसके पीछे कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

(1) प्राय द्वीपीय भारत में गन्ने की फसल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन उत्तर भारतीय क्षेत्र से अधिक है।

वास्तविकता तो यह है कि उष्ण-कटिबंधीय जलवायु गन्ने की पैदावार के लिये बहुत अनुकूल होती है।

(2) शर्करा (सुक्रोज) की मात्रा, जो गन्ने की मिठास को नियन्त्रित करती है, उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्र की फसल में अपेक्षाकृत अधिक होती है।

(3) गन्ना पेरने की अवधि दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा ज्यादा लम्बी होती है।

(4) दक्षिण भारत में अधिकांश चीनी मिलों में आधुनिक उपकरण प्रयोग में लिये जाते हैं।

(5) दक्षिण भारत में चीनी उद्योग की अधिकांश मिलों का स्वामित्व सहकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत है, जहाँ मुनाफा को अधिक से अधिक करने का न तो लक्ष्य होता है और न ही प्रवृत्ति।

- कृषि-आधारित उद्योग कृषि उत्पादों को कच्चे माल

के रूप में उपयोग करते हैं।

- भारत के संगठित क्षेत्र में सूती-कपड़ा उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है।

- सूती वस्त्र उद्योग भारत के अधिकांश राज्यों में अवस्थित है।

- बहुत बड़ी संख्या में चीनी मिलों महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात तथा बिहार राज्य में स्थापित है।

पाठगत प्रश्न 24.3

1. प्रथम आधुनिक सूती वस्त्र का कारखाना कब और कहाँ स्थापित किया गया?

2. भारत में सकल सूती कपड़ा उत्पादन में पावरलूम का योगदान कितना प्रतिशत है?

3. भारत में कौन सा राज्य सूती वस्त्र उत्पादन में अग्रणी है?

4. किन्हीं तीन कारणों को स्पष्ट कीजिए जो चीनी उद्योग के उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर स्थानांतरण होने की स्थितियों को समझा सके।

24.4 खनिज आधारित उद्योग

वे उद्योग जिनमें खनिजों को कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाया जाता है खनिज आधारित उद्योग कहलाते हैं। इन उद्योगों में लोहा एवं इस्पात उद्योग सबसे महत्वपूर्ण है। इन्जीनियरिंग, सीमेन्ट, रासायनिक एवं उर्वरक उद्योग भी खनिज आधारित उद्योग के उदाहरण हैं।

(क) लोहा एवं इस्पात उद्योग

यह एक आधारभूत उद्योग हैं क्योंकि इसके उत्पाद बहुत से उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

(क) लोहा एवं इस्पात उद्योग

यह एक आधारभूत उद्योग हैं क्योंकि इसके उत्पाद बहुत से उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

भारत में यद्यपि लोह इस्पात के निर्माण की औद्योगिक क्रियाएँ बहुत पुराने समय से चली आ रही हैं किन्तु आधुनिक लोह इस्पात उद्योग की शुरुआत 1817 में बंगाल के कुलटी नामक स्थान पर बंगाल लोहा एवं इस्पात कारखाने की स्थापना से हुई। टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी की स्थापना जमशेदपुर में 1907 में हुई। इसके पश्चात भारतीय लोहा एवं इस्पात संयंत्र की स्थापना 1919 में बन्धपुर में हुई। इन तीनों संयंत्रों की स्थापना निजी क्षेत्र के अंतर्गत हुई थी। सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत प्रथम लोहा एवं इस्पात कम्पनी जिसे अब "विश्वेसरैया लोहा" एवं इस्पात कम्पनी के नाम से जाना जाता है, की स्थापना भद्रावती में सन 1923 में हुई थी।

स्वतंत्रता के पश्चात लोहा एवं इस्पात उद्योग में तीव्रता से प्रगति हुई। सभी वर्तमान इकाइयों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई। तीन नए एकीकृत संयंत्रों की स्थापना क्रमशः राउरकेला (उडीसा), फिलाई (छत्तीसगढ़) तथा दुगापुर (पश्चिम बंगाल) में की गई। बोकारो इस्पात संयंत्र की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सन 1964 में की गई। बोकारो तथा भिलाई स्थित संयंत्रों की स्थापना भूतपूर्व सोवियत संघ के सहयोग से की गई। इसी प्रकार दुगापुर लोहा एवं इस्पात संयंत्र की स्थापना यूनाइटेड किंगडम के सहयोग से तथा राऊरकेला संयंत्र जर्मनी के सहयोग से स्थापित किए गए। इसके पश्चात विशाखापट्टनम और सलेम संयंत्रों की स्थापना हुई। स्वतंत्रता के समय भारत सीमित मात्र में कच्चे लोहे तथा इस्पात का निर्माण करता था। सन 1950-51 में भारत

में इस्पात का उत्पादन केवल 10 लाख टन था जो 1998-99 में बढ़ते-बढ़ते 238 लाख टन तक पहुँच गया।

भारत के प्रमुख लौह तथा इस्पात संयंत्र झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उडीसा, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु राज्यों में अवस्थित हैं। इसके अलावा भारत में 200 लघु इस्पात संयंत्र हैं जिनकी क्षमता 62 लाख टन प्रति वर्ष है। लघु इस्पात संयंत्रों में इस्पात बनाने के लिये स्कोप या स्पॉन्ज लोहे का प्रयोग किया जाता है। ये सारी छोटी इकाइयाँ देश में लोहा तथा इस्पात उद्योग के महत्वपूर्ण घटक हैं।

लोहा तथा इस्पात उद्योग के अधिकांश संयंत्र भारत के छोटा नागपुर पठार पर अथवा उसके आस-पास इसलिये स्थापित हुए हैं, क्योंकि इसी क्षेत्र में लौह अयस्क, कोयला, मैग्नीज, चूने का पत्थर, डोलोमाइट जैसे महत्वपूर्ण खनिजों के विपुल निक्षेप मिलते हैं।

लौह-इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक कच्चे माल, शक्ति एवं स्वामित्व तथा अवस्थिति की जानकारी निम्नलिखित सारिणी में दी गई है-

सारिणी 24.2 भारत: लोहा तथा इस्पात संयंत्र एवं उनके कच्चे माल के स्रोत कच्चे माल की आपूर्ति क्रम सं.

संयंत्रों के नाम

स्थिति

स्वामित्व

कोयला/ बिजली

लौह अयस्क

चूने का पत्थर

मैग्नीज

1.

टाटा आयरन एण्ड स्टील कं- (टिस्को)

जमशेदपुर

निजी क्षेत्र

झारिया

मयूरभंज

कोयला

सिंहभूमि

2.

ईंडियन आयरन एण्ड स्टील कं. (इस्को)

बन्धपुर

सार्वजनिक क्षेत्र

झारिया दामोदरघाटी

सिंहभूमि मयूरभंज

कोयला

सिंहभूमि

3.

विश्वेसरैया आयरन एण्ड स्टील कं. (वीआई इसएल)

भद्रावती

सार्वजनिक क्षेत्र

सारावती परियोजना

केमामान गुडी

भाडिगुडा

चित्रदुर्ग, शिमोगा

4.

हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)

राऊरकेला

सार्वजनिक क्षेत्र
बोकारो, झारिया हीराकुण्ड परियोजना
सुन्दरगढ़, क्योंझर
पुमापानी
बड़ा जामदा

5.
हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)
भिलाई

सार्वजनिक क्षेत्र
करगती, कोरबा
दल्ली राजहरा
नदनी
बालाघाट

6.
हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)
दुगापुर

सार्वजनिक क्षेत्र
झारिया, दामोदर धाटी
बोलांगीर, क्योंझर
बीरभिंतपुर (सुन्दरगढ़ जिला)
जामदा क्योंझर जिला

7.
भारत स्टील लि. (बीएसएल)
बोकारो

सार्वजनिक क्षेत्र
झारिया
किरिबुरु
पलामू

8.
एसएसपी

सलेम
सार्वजनिक क्षेत्र
नैवेली
सलेम जिला
सलेम जिला
सलेम जिला

9.
बीएसएल
विशाखापट्टनम
सार्वजनिक क्षेत्र
दामोदर धाटी
बैलाडीला (छत्तीसगढ़ राज्य)
छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश
बालाघाट

भारत लौह इस्पात केन्द्रकच्चे माल के बारे में जितनी जानकारियाँ सारिणी 24.2 में दी गई हैं उनका मिलान चित्र संख्या 24.2 के साथ भी किया जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 24.4

1. "बांगाल लोहा एवं इस्पात वकर्स" किस स्थान पर और कब स्थापित हुआ था?

2. दुगापुर इस्पात संयंत्र किस देश के सहयोग से स्थापित हुआ था?

3. निम्नलिखित इस्पात संयंत्रों में से कौन सा संयंत्र आंध्र प्रदेश में है?

(क) दुगापुर (ख) बोकारो (ग) भिलाई (घ) विशाखापट्टनम

4. निम्नलिखित में से कौनसा इस्पात संयंत्र निजी क्षेत्र में है?

(क) बर्नपुर (ख) भद्रावती (ग) जमशेदपुर (घ) भिलाई

24.5 पेट्रो-रसायन उद्योग

भारत में पेट्रोरसायन उद्योग तेजी से वृद्धि करता हुआ उद्योग है। इस उद्योग ने देश के पूरे उद्योग जगत में एक क्रांति ला दी है क्योंकि इसके उत्पाद परम्परागत कच्चे माल जैसे लकड़ी, काँच एवं धातु को प्रतिस्थापित करने में अधिक सस्ते और उपयोगी पाए जाते हैं। लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले इस पेट्रो-रसायन के उत्पाद लोगों को सस्ते दामों पर उपलब्ध हैं। पेट्रो-रसायन को पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस से प्राप्त किया जाता है। हम पेट्रो-रसायन से निर्मित विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग सुबह से शाम तक करते हैं। टूथ-ब्रश, टूथ-पेस्ट, कंधी, बालों में लगाने वाले हेयर पिन, साबुन रखने के डिब्बे, प्लास्टिक मग, सिंथेटिक कपड़े, रेडियो और टी.वी. कवर, बाल पॉइंटपेन, इलेक्ट्रिक स्विच, डिटॉनेट पाउडर, लिपस्टिक, कीड़े मारने की दवाइयाँ, प्लास्टिक थैलियाँ, फोम के गद्दे तथा चादरें इत्यादि असंख्य वस्तुएँ पेट्रो-रसायन से ही बनती हैं।

भारतीय पेट्रो-रसायन निगम ने बडोदरा (गुजरात) के समीप एक बहुद पेट्रोकेमिकल कॉम्प्लेक्स को स्थापित किया है जिसमें विभिन्न प्रकार के पदार्थ बनाए जाते हैं। बडोदरा के अलावा गुजरात राज्य में गन्धरा केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं। अन्य राज्यों में महाराष्ट्र (नागार्थान केन्द्र) में पेट्रो रसायन उद्योग स्थापित है। भारत पेट्रो रसायन पदार्थों के निर्माण में पूर्णतः आत्म निर्भर है।

कच्चे तेल को परिष्कृत किए बगैर कोई खास महत्व नहीं है। परन्तु जब उसे परिष्कृत किया जाता है तब वह खनिज तेल पेट्रोल के रूप में बहुत मूल्यवान बन जाता है। तेल के परिष्करण करते समय हजारों किस्म के पदार्थ मिलते हैं- जैसे मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल, लुब्रिकेंट्स और वे पदार्थ जो पेट्रो-रसायन उद्योग में कच्चे माल के रूप में उपयोग में आते हैं।

भारत में इस समय 18 तेल परिष्करण शालाएँ हैं। इन तेल परिष्करण शालाओं की अवस्थिति इस प्रकार है- डिगबोई, बोंगइगाँव, नूना माटी (तीनों असम राज्य में), मुम्बई (महाराष्ट्र) में दो इकाइयाँ हैं, विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश), बरौनी (बिहार राज्य), कोयलाली (गुजरात), मथुरा (उत्तर प्रदेश), पानीपत (हरियाणा), कोंच्चि (केरल), मैंगलोर (कर्नाटक) और चेन्नई (तमिलनाडु)। जामनगर (गुजरात) में स्थित परिष्करणशाला एकमात्र संयंत्र है जो निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है तथा यह रिलायन्स उद्योग लि. द्वारा लगाया गया है।

पाठगत प्रश्न 24.5

1. कच्चेमाल के रूप में प्रयुक्त तीन पदार्थों के नाम लिखिये जिनका प्रतिस्थापन पेट्रो-रसायनिक पदार्थों द्वारा होता है।

2. पेट्रो रसायन निगम का मुख्यालय कहाँ पर अवस्थित है?

3. महाराष्ट्र में एक पेट्रो रसायन केन्द्र का उल्लेख कीजिए?

4. सही मिलान कीजिए-

(क) नून माटी () केरल

(ख) कोंच्चि () असम

(ग) करनाल () बिहार

(घ) बरौनी () हरियाणा

24.6 औद्योगिक समूह

भारत में औद्योगिक विकास के स्तरों में बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानताएँ व भिन्नताएँ हैं। कुछ स्थानों पर भारतीय उद्योग समूह के रूप में सकेन्द्रित हो गए हैं। भारत में अधिकतर औद्योगिक क्षेत्रों का विकास कुछ प्रमुख बन्दरगाहों जैसे कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई के पृष्ठ भाग के ईंट-गिर्द क्षेत्रों में हो गया है। इन औद्योगिक क्षेत्रों को सभी सुविधाएँ एवं लाभदायक स्थितियाँ प्राप्त हैं जैसे कच्चे माल की उपलब्धि, ऊर्जा, पूँजी, विषणन केन्द्रों तक अधिगम्यता, इत्यादि। कुल छ: औद्योगिक क्षेत्रों में से तीन इन बन्दरगाहों के पृष्ठ प्रदेश में ही स्थित हैं। प्रमुख छ: औद्योगिक क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

(1) हुगली औद्योगिक क्षेत्र

(2) मुम्बई-पुणे औद्योगिक क्षेत्र

(3) अहमदाबाद-बडोदरा क्षेत्र

(4) मुरुरई-कोयम्बटूर-बंगलुरु क्षेत्र

(5) छोटा नागपुर का पठरी क्षेत्र

(6) दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्र

इन उपरोक्त प्रमुख क्षेत्रों के अलावा 15 छोटे औद्योगिक क्षेत्र तथा 15 औद्योगिक क्षेत्रों के अलावा 15 औद्योगिक क्षेत्र जिले हैं।

24.7 औद्योगिक आत्मनिर्भरता

औद्योगिक आत्मनिर्भरता का अर्थ है भारत के लोग उद्योगों की स्थापना, संचालन और प्रबंधन, देश में उपलब्ध तकनीकी ज्ञान, पूँजी एवं मशीनरी, कल पुर्जे जो भारत में ही विनिर्मित किए जाते हैं, उनका उपयोग दक्षता और कुशलता से कर सकने में समर्थ हैं। इसमें किसी भी बाहरी देश के किसी भी प्रकार की सहायता पर निर्भरता नहीं रहती।

भारत सरकार ने सन 1956 में एक औद्योगिक नीति का निर्धारण किया जिसके मुख्य लक्ष्य थे- औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाना, रोजगार पैदा करना, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना, औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानता को दूर करना तथा लघु-उद्योग एवं कुटीर-उद्योग का विकसित करना इत्यादि।

उद्योगों के सुनियोजित विकास के द्वारा आज हम अनेकों प्रकार के औद्योगिक उत्पादों का निर्माण करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है ऐसी वस्तुओं का विनिर्माण जो अन्य वस्तुओं को विनिर्मित करने में सहायता और उपकरणों के निर्माण में सक्षम और पूर्णतः स्वावलम्बी है। इन विनिर्मित मशीनों एवं विभिन्न उपकरणों का उपयोग उत्खनन, सिंचाई, ऊर्जा परियोजनाओं, परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में होती है। हम भारत में बनी भारी मशीनरी और उपकरणों के निर्माण में सक्षम और पूर्णतः स्वावलम्बी हैं। इन विनिर्मित मशीनों एवं विभिन्न उपकरणों का उपयोग उत्खनन, सिंचाई, ऊर्जा परियोजनाओं, परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में होता है।

सार्वजनिक क्षेत्र का औद्योगिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में अभूतपूर्व योगदान रहा है। लोहा एवं इस्पात, रेलवे के उपकरण, पेट्रोलियम, कोयला एवं उवर्कं जैसे उद्योगों का सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही विकास किया गया है। ये उद्योग औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में ही स्थापित किए गए थे। सातवीं पंचवर्षीय योजना के काल में उच्च-प्रौद्योगिकी, उच्च मूल्य संवर्धन और आधुनिक

ज्ञान विज्ञान आधारित उद्योग जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग, प्रोन्नत प्रकार के मशीनी उपकरण, निर्माण, दूर-संचार के क्षेत्र पर अधिक बल दिया गया था।

24.8 आर्थिक उदारीकरण का प्रभाव

भारत में औद्योगिकरण की प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - 1992 के पूर्व एवं पश्चात। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम चालीस वर्षों के अन्तराल में भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से विविधता तथा विस्तार आए। परन्तु इस वृद्धि में कठोर सरकारी नियंत्रण तथा निर्धारित नियमों का अनुपालन इसकी विशेषता रही है।

अगस्त 1992 में भारत सरकार ने एक साहसिक कदम उठाते हुए भारत की आर्थिक-नीतियों पर लगने वाले सरकारी नियंत्रणों में बदलाव लाया गया और इन्हें बाजार की शक्तियों के अनुरूप बदलाव लाने का लचीलापन प्रदान किया गया। निजी पूँजी निवेश तथा संचालन की जिम्मेदारी देते हुए उद्योगों को चाहे घरेलू अथवा विदेशी संस्थाएँ अथवा समुदाय हो, कार्यान्वित और स्थापित करने की छूट प्रदान करने की जरूरत को महसूस किया गया। इन सभी सोच-विचार का नतीजा एक नई औद्योगिक नीति का निर्धारण करना था जिसके अन्तर्गत अगस्त 1992 में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नई नीति को अपनाया गया था। अगस्त 1992 में लिये गए इस नीति नियम के पीछे ताल्कालिक कारण बकाया भुगतान की अदायगी के संकट पर काबू पाना तथा सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक निहितार्थों पर नियंत्रण प्राप्त करना था।

उदारीकरण का अर्थ एक तो सरकारी नियंत्रण में कमी लाना है दूसरा उस उदार दृष्टिकोण से है जिसके अन्दर बाजार की मौजूदा प्रतिस्पद्धार्थक शक्तियों के अनुरूप आर्थिक नीतियों में लचीलापन लाना। इससे सरकार की उदार प्रवृत्ति के तहत निजीकरण को प्रोत्साहित करने का इरादा भी उजागर होता है। इन उदारीकरण नीतियों ने उद्योगों की स्थापना एवं संचालन, जो 1992 के पहले के वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्रों पर ही निर्भर थे, में निजी संस्थाओं को भी जिम्मेदारी, भागीदारी के अवसर प्रदान किए। इस उदारीकरण को भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त तमाम कमियों का अचूक रामबाण माना गया।

परन्तु लगातार 15 वर्षों तक इस उदारीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए जो परिणाम उपलब्ध हुए हैं वे इतने अच्छे नहीं हैं। धनवान और निर्धन, सप्तन्न एवं विपन्न के बीच खाई अब और बढ़ गई। व्यापक खपत वाली वस्तुओं के उत्पादन में अपेक्षाओं के अनुरूप वृद्धि नहीं हुई। इसी प्रकार रोजगार के अवसरों में भी आशातीत वृद्धि नहीं हुई। निजीकरण में स्वामित्व का हस्तांतरण सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र में, निजी संस्थाओं/व्यक्ति समूह के हाथों में आ जाता है तथा अधिक से अधिक औद्योगिक क्षेत्रों को निजी पूँजी और प्रबन्धन को सौंपा जाता है। निजीकरण का मुख्य उद्देश्य निजी संसाधनों का लोगों के सामूहिक कल्याण के लिये प्रयोग करना है।

वर्तमान चरण में वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओं में एकीकृत सम्बन्धों को बढ़ाने से है। विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक असमानता को विभिन्न देशों के बीच व्यापार के तहत सामान/वस्तुओं/व्यक्तियों/सेवाओं के आदान-

प्रदान/पूँजी निवेश/प्रौद्योगिकी के आदान प्रदान पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करके दूर किया गया।

वैश्वीकरण ने लोगों के रहन-सहन, जीवन के स्तर एवं जीवन-शैली तथा वस्तुओं के उपयोग-प्रतिमानों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। आज पूरा का पूरा विश्व ही विपणन का व्यापक केन्द्र जैसा लगने लगा है। वैश्वीकरण ने हमारे नैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं को भी प्रभावित किया है।

1. भारत ने कब अपनी पहली औद्योगिक नीति का निर्धारण किया?

2. सातांवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत किन्हीं तीन उद्योगों का उल्लेख कीजिए, जिन पर प्रभावी ढंग से विशेष ध्यान दिया गया था।

3. उदारीकरण का क्या अर्थ है?

आपने क्या सीखा

प्राकृतिक संसाधनों को अधिक उपयोगी और मूल्यवान बनाने के लिये उनको संसाधित करने की प्रक्रियाओं को विनिर्माण कहते हैं। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति एवं समृद्धि का सीधा सम्बन्ध उस देश में हो रहे औद्योगिक विकास के स्तर से सीधा जुड़ा होता है। भारत में विनिर्माण उद्योगों का देश के सकल घरेलू उत्पादन में भागीदारी का अंश प्रतिशत के रूप में पिछले कुछ वर्षों में विशेष रूप से आर्थिक नीतियों में सुधार के बाद वाले वर्षों में बढ़ता रहा है। स्वतंत्रता पूर्व भारत औद्योगिक रूप से कम विकसित था। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वाले वर्षों में भारत ने सुनियोजित ढंग से औद्योगिक विकास को बढ़ाने के लिये अपनी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया। और आज भारत विभिन्न विभिन्न वस्तुओं का निर्यात विश्व के विभिन्न देशों को कर रहा है।

उद्योगों को उनमें प्रयोग होने वाले कच्चे माल के स्रोत, प्रमुख कार्य, उद्योग के आकार तथा कच्चे और तैयार माल के भार के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। भारत चौंक अभी भी एक कृषि-प्रधान देश है, यहाँ पर विविध प्रकार के कृषि-आधारित उद्योग जैसे सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, जूट के कपड़े के उद्योग एवं चीनी उद्योग इत्यादि विकसित हो गए हैं। भारत में संगठित क्षेत्र के उद्योगों में सूती-वस्त्र निर्माण उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। भारत में विपुल खनिज भण्डार है। अतः भारत में खनिजों पर आधारित बहुत सी औद्योगिक इकाइयाँ विकसित हुई हैं, जैसे लोहा एवं इस्पात उद्योग, भारी मशीनरी उद्योग, ऑटोमोबाइल, रासायनिक उद्योग, पेट्रो-रसायन उद्योग इत्यादि।

भारत सरकार ने ऐसी औद्योगिक नीतियों का निर्धारण किया था जिनके कारण भारत उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में स्वावलंबी हो सका है। उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा निजीकरण को प्रोत्साहन देने से विदेशी पूँजी-निवेश के साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी को भारत में लाने में बहुत सहायता प्राप्त हुई है। निजी उद्योगों को उद्योगों के अभ्यंतर क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति प्रदान करने से उद्योग-क्षेत्र में प्रतिस्पद्धार्थक तीव्र प्रगति भी हुई है।

पाठान्त्र प्रश्न

1. मुम्बई और आस-पास के क्षेत्रों में सूती-वस्त्र निर्माण उद्योग के संकेन्द्रित होने के क्या कारण हैं? कोई चार कारण

प्रयोग बताइए।

2. चीनी उद्योग के उत्तर भारतीय क्षेत्र से दक्षिण भारतीय

क्षेत्र में स्थानांतरित होने के तीन कारणों का उल्लेख कीजिए।

3. स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को उदाहरण सहित वर्गीकृत कीजिए।

4. औद्योगिक स्वावलंबन की परिभाषा दीजिए। भारत को औद्योगिक स्वावलंबन की आवश्यकता क्यों है?

5. छोटा नागपुर पठार में और उसके आस-पास के क्षेत्र में इस्पात उद्योग के संकेन्द्रित होने के किन्हीं चार कारकों का वर्णन कीजिए।

6. कृषि आधारित उद्योग और खनिज आधारित उद्योग के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। दोनों उद्योगों के दो-दो उदाहरण दीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. 1772 रानीगंज

2. 1854

3. जमशेदपुर

24.2

1. (ग) बोकारो लौह एवं इस्पात संयंत्र

2. (घ) चीनी उद्योग

3. (घ) बिजली के पंखे

4. कच्चे माल के स्रोत, स्वामित्व, कार्य, आकार, कच्चे माल तथा उत्पादित वस्तुओं के भार के आधार

24.3

1. 1854, मुम्बई

2. 74%

3. महाराष्ट्र

4. प्रति हेक्टेयर गने का अधिक उत्पादन सुक्रोज की अधिक मात्रा

गने-पेरने की त्रहुत की लम्बी अवधि

आधुनिक मशीनरी

उद्योगों का सहकारी क्षेत्र में होना (कोई तीन कारण)

24.4

1. पश्चिम बंगाल के कुल्टी में, 1817

2. युनाइटेड किंगडम

3. (घ)

4. (ग)

24.5

1. लकड़ी, काँच, धातु

2. वडोदरा

3. नागार्थेन

4. (क) और (), (ख) और (), (ग) और (५), (घ) और (६)

1. 1956

2. इलेक्ट्रॉनिक्स, उच्च किस्म के मशीनी उपकरण और दूर संचार उपकरण

3. सरकारी नियंत्रण में कमी और बाजार की प्रतिस्पद्धा अधिक

पाठान्त्र प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 24.3 (क) देखिए

2. अनुच्छेद 24.3 (ख) देखिए

3. अनुच्छेद 24.2 (सारिणी 24.1) देखिए

4. अनुच्छेद 24.7 देखिए

5. अनुच्छेद 24.4 देखिए

6. अनुच्छेद 24.2 (सारिणी 24.1) देखिए

सामाजिक मुद्दे एवं पर्यावरण अनुरक्षण



अपोषणीय से पोषणीय या संघृत विकास की ओर पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य हमारी क्षमताओं से संबंद्ध पर्यावरणीय अनुरक्षण तथा परिरक्षण पर निर्भर करता है। इसी संदर्भ में पर्यावरण के दीर्घावधिक उपयोग एवं अभिवृद्धि के लिये संघृत विकास की संकल्पना का विकास हुआ है। 1990 के दशक में यह माना जाने लगा कि पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन या अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग करने पर पर्यावरणीय ह्लास तथा अस्थिरता उत्पन्न हो रही है। यह सर्वाधिक विकासशील देशों में देखा गया है।

पोषणीयता या संघृता सभी प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों का एक अन्तर्निर्मित लक्षण है, जो मानवीय हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर स्वीकार करता है। यह किसी तंत्र की क्षमता तथा उसके सतत प्रवाह को अनुकूल रखने के लिये संबंद्ध करता है, जिसके फलस्वरूप वह तंत्र

अपना स्वस्थ अस्तित्व रख पाता है। पर्यावरणीय संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा पर्यावरणीय तंत्रों में हस्तक्षेप के कारण यह अन्तः निर्मित क्षमता विकृत हो जाती है, जो इसे असंघृत बना देती है।

इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि संसाधनों के दोहन तथा अवरुद्धन से शोध एवं विकास को बढ़ावा मिलता है तथा संसाधनों के नए विकल्पों के बारे में खोज की ओर अग्रसर होते हैं, लेकिन हर सम्भावना की भी एक सीमा होती है। संरक्षणवादी एवं पारिस्थितिकीविद् एक लम्बे समय से प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों में विद्यमान पोषणीयता से अवगत थे, लेकिन संघृत विकास की संकल्पना का विकास दो दशक पूर्व ही हुआ। संघृत विकास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विश्व संरक्षण रणनीति में 1980 में किया गया, लेकिन यह विस्तार से 1987 में पर्यावरण एवं विकास

पर विश्व आयोग द्वारा प्रचारित किया गया।

भावी पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में ह्लास किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना ही संघृत विकास है। संघृत विकास की संकल्पना में निमांकित दो संकल्पनाएँ निहित हैं-

आवश्यकताओं की संकल्पना पर विचार किया जाना चाहिए जिसमें विशेष रूप से विश्व के गरीब लोगों की आवश्यकताओं पर बल दिया जाए।

वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली पर्यावरणीय क्षमता पर प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन द्वारा निर्धारित सीमाओं पर विचार किया जाए। लम्बे समय से यह मान्यता रही है कि पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य प्रकृति के अनुरक्षण एवं संचयन की हमारी क्षमताओं पर आधारित रहा है। प्रकृति प्रदत्त



जीवन निर्वाहन व्यवस्था को बचाने में हमारी क्षमताओं में कमी आते ही पर्यावरण असंतुलित हो जाता है। इसी संदर्भ में संघृत विकास से संबंधित निम्न प्रसंग महत्वपूर्ण हैं-
सभी नव्यकरणीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग संघृत है। पृथ्वी पर जीवन की विविधता संरक्षित है। प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों का ह्रास कम हो गया है। 10.2 संघृत विकास के सिद्धांत संघृत विकास की मान्यता है कि उपयुक्त प्रविधि एवं सामाजिक व्यवस्था द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र से पर्याप्त मात्रा में संसाधनों की प्राप्ति हो सकती है, जो मानव समाज की वर्तमान एवं भावी जरूरतों की पूर्ति कर सकते हैं, पृथ्वी पर ऐसा विकास नहीं जो पर्यावरण में विद्यमान संसाधनों के उपयोग पर नियंत्रण रखे जैसा कि पर्यावरण संरक्षण की मान्यता है। लेकिन यह पर्यावरण संरक्षण से हटकर संसाधनों के दोहन पर अंकुश नहीं लगाकर उनकी अधिकता पर बल देता है जिसके परिणामस्वरूप मानव एवं पर्यावरण के मध्य एक ऐसी परिवर्तनशील व्यवस्था का उद्भव होता है, जो संसाधनों के विदोहन, प्रौद्योगिकी विकास तथा संस्थागत परिवर्तनों के द्वारा मानव समाज की वर्तमान एवं भाव आवश्यकताओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करने को महत्व देता है। इस प्रकार संघृत विकास निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है।

1. सामुदायिक जीवन की देखभाल एवं सम्मान करना।
2. मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार।
3. पृथ्वी की सहन क्षमता एवं विविधता का संरक्षण करना।
4. अनव्यक्तरणीय संसाधनों की गुणवत्ता का ह्रास को कम करना।
5. पृथ्वी की निर्वाहन क्षमता को बनाए रखना।
6. व्यक्तिगत वृष्टिकोण तथा नियमों में परिवर्तन।
7. सक्षम समुदायों द्वारा अपने पर्यावरण की देखभाल करना।
8. समग्र विकास तथा संरक्षण के लिये एक राष्ट्रीय

आधार तैयार करना

9. विश्वव्यापी गठबंधन का निर्माण करना।

इस प्रकार संघृत विकास पर्यावरण के ऐसे सकारात्मक संरक्षण पर बल देता है, जिसमें पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों के रक्षण, अनुरक्षण, पुनर्स्थापना, दीर्घकालिक दोहन एवं अधिवृद्धि को समग्र रूप में महत्व प्रदान किया गया है। इस प्रकार संघृत विकास में निम्नांकित मुद्दे समाहित हैं-

संसाधनों के उपयोग के प्रतिरूपों की अन्तर्फैलीय उलझन

इसमें इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि पर्यावरणीय धरोहर को संरक्षित करने के लिये प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बारे में कितनी प्रभावकारी निर्णयन प्रक्रिया अपनाई जाए ताकि भावी पीढ़ियों को लाभ मिल सके। निष्पक्षता पूर्ण संबंध

इसमें संसाधनों पर किसी की पहुँच अधिक है? प्रतियोगी दावेदारों में उपलब्ध संसाधनों का आवंटन कितनी ईमानदारी या पूर्णता के साथ है? आदि तथ्यों पर बल दिया जाता है।

समय संस्तर

लघु अवधि के आर्थिक लाभ या दीर्घ अवधि की पर्यावरणीय स्थिरता की दिशा में संसाधनों का आवंटन कितना निर्णय उन्मुखी है।

संघृत विकास पर्यावरण ह्रास को न्यूनतम हानि पहुँचाने वाली प्रौद्योगिकी को विकास, जनसंख्या नियंत्रण, संसाधन संरक्षण, भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान संसाधन उपयोग की रणनीति बनाने आदि पर निर्भर है। यद्यपि यह पारिस्थितिकी तंत्र के उपयोग की कोई निरपेक्ष सीमा स्वीकार नहीं करता वरन् इसमें उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकास द्वारा संसाधनों की अधिवृद्धि कर आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल देता है।

10.3 जल संरक्षण

विश्व में जल संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है। 21वीं शताब्दी के इस प्रथम दशक में विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में जल संकट को

महसूस कर रही है जिसके अंतर्गत दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी का नेतृत्व करने वाले 80 देश आते हैं जो जल संकट की भयकर चेपेट में हैं। जल के मुख्य स्रोत नदियाँ हैं तथा विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या 250 नदी बेसिनों में निवास करती है। इनमें अनेक नदियाँ पूर्णरूपेण किसी एक देश में ही स्थित हैं। लेकिन कुछ नदियाँ अन्तर्राष्ट्रीय हैं जिनका जल विभिन्न अनुपात में समझौतों के तहत उपयोग में लिया जाता है। प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर सभी देशों को स्वच्छ जल की मात्रा को संरक्षित करने की आवश्यकता है जिसके लिये विभिन्न भौगोलिक अवस्थितियों तथा परिस्थितियों में उपयुक्त विधि अपनाकर जल को संरक्षण प्रदान करना चाहिए। समय के साथ बढ़ती माँग एवं आर्थिक गतिविधियों की विविधता के संदर्भ में जल का उपयोग प्रतिरूप भी परिवर्तित हुआ है जिसे यद्यपि मूल रूप में पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता, वरन् समय के साथ बदलते परिवेश में संरक्षित किया जा सकता है। इसके लिये निम्नांकित विधियाँ कारगर सिद्ध होंगी-

जल की प्रदूषण से सुक्ष्मा पृथ्वी पर उपलब्ध कुल स्वच्छ जल यदि प्रदूषण मुक्त रहे तो दुनिया की वर्तमान जनसंख्या की जलापूर्ति संबंधी सम्पूर्ण कार्यों के लिये पर्याप्त लेकिन शुद्ध जल का बड़ा भाग बढ़ती आर्थिक क्रियाओं तथा नगरीयकरण आदि के कारण जगत के उपयोग के योग्य नहीं रहा है। महासागरीय जल सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में पृथ्वी की एक प्रमुख पर्यावरणीय व्यवस्था है। लेकिन विगत शताब्दी में भारी मात्रा में प्रदूषण फैला है। सतही जल मुख्यतः नदियों व झीलों तथा भूमिगत जल भूपृष्ठ में विभिन्न गहराईयों में मिलता है जिसे प्रदूषित कर दिया गया है। नदियों के किनारे स्थित बड़े शहरों से विभिन्न अपशिष्टों का बिना उपचार के नदियों में प्रत्यक्ष विसर्जन किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रसिद्ध झीलों तथा सागर तटों पर पर्यटन व्यवसाय ने युद्ध स्तर पर जल प्रदूषण फैलाया है। मानव अपनी जल संबंधी आवश्यकताओं के लिये भजल पर सर्वाधिक निर्भर रहता है लेकिन कुछ विशिष्ट आँदोगिक इकाइयों ने भूमि के सुरक्षा कवच में स्थित इस जल राशि को भी प्रदूषित कर दिया है।

जल का पुनर्वितरण

भू-सतह पर पाया जाना वाला जल समान रूप से वितरित नहीं है। वितरण का वर्तमान प्रतिरूप भी संकट का कारण बन जाता है। अफ्रीका महाद्वीप में संसार की सर्वाधिक जल विद्युत सम्भाव्यता पायी जाती है क्योंकि यहाँ भूमध्यरेखीय प्रदेशों में जल की प्राप्ति अधिक है जबकि अफ्रीका के उत्तर में स्थित संसार का सबसे बड़े मरुस्थल सहारा वर्षभर जल संकट से ग्रस्त रहता है। सहारा के उत्तर में स्थित हृसहेलह प्रदेश में आने वाले सूखे विश्व प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार भारत के पूर्वोत्तर भाग में संसार की सर्वाधिक वर्षा (मोसिनाराम 1187 सेमी.) प्राप्त होती है जबकि पश्चिम में 50 सेमी. वर्षा होती है, परिणामस्वरूप पूर्वोत्तर भारत में बहापुत्र तथा इसकी सहायक नदियों में प्रतिवर्ष आने वाले जल का 60 प्रतिशत से अधिक भाग बिना उपयोग के ही लवणीय सागर में मिल जाता है। जबकि पश्चिमी राजस्थान में नदियों वर्ष के अधिकांश समय में शुष्क रहती है। अतः कम आवश्यकता वाले क्षेत्रों से अधिक आवश्यकता वाले क्षेत्रों को जलापूर्ति करके जल संकट को कम



किया जा सकता है।

इसके लिये सतह जल संग्रह स्थलों का निर्माण करके अतिरिक्त जल को अभावग्रस्त क्षेत्रों में एकत्रित करके आपूर्ति की जा सकती है। यह कार्य जलाशयों तथा नहरी जाल विकसित करके ही सम्पन्न हो सकता है। इस दृष्टि से भारत में चल रही नदियों को जोड़ने की योजना कारगर पिछु होणी। वर्षा से प्राप्त वर्ष जल जो नदियों द्वारा बिना उपयोग में लिये ही बह जाता है, जलाशयों का निर्माण करके ऐसे जल को संग्रहीत किया जाता है, जिससे कृषि, उद्योगों, नगरों आदि को जल की पूर्ति की जाती है। जलाशयों में एकत्रित जल में परिवहन तथा मत्स्यन की सुविधाएँ भी रहती हैं। नदियों में बाढ़ों के प्रकोप से बचन के उद्देश्य से भी ये जलाशय बनाए जाते हैं जिनके द्वारा बाढ़ से बचाव के साथ ही उस जल का विविध रूपों में उपयोग करते हैं।

भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग

विश्व स्तर पर भूजल कुल जल आपूर्ति का 25 प्रतिशत पूरा करता है। शेष 75 प्रतिशत नदियों, झीलों आदि सतही जलस्रोतों से होती है। भूजल की उपलब्ध मात्रा के अनुपात में इसकी माँग निरंतर बढ़ती जा रही है जिस कारण भूजल की मात्रा कम होती जा रही है। भूजल का दोहन एक बार होने के उपरांत पुनः पूर्ति काफी लम्बे समय में पूर्ण हो पाती है, अतः भूजल की पुनः पूर्ति के अनुपात में ही दोहन किया जाना चाहिए। भारत में भूजल का सर्वाधिक उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है। कृषि जलवायु दशाओं के अनुसार जल की माँग वाली फसलें न बोकर व्यापारिक महत्व की फसलों को बढ़ावा दिया जा रहा है जिस कारण भूजल का अतिदोहन किया गया है। राजस्थान के 1984 में

कुल 237 विकास खंडों में से 203 भूजल दोहन की विष्टि से सुरक्षित वर्ग में थे लेकिन विगत दो दशकों में भूजल के युद्धस्तर पर किए गए दोहन के कारण सुरक्षित विकास खंडों की संख्या घटकर वर्ष 2001 में केवल 49 रह गई तथा शेष खंड भूजल दोहन की विष्टि से अंधकारमय वर्ग में चले गए जहाँ भविष्य में विविध कार्यों हेतु आवश्यक मात्रा में भूजल उपलब्ध नहीं रहा है।

जनसंख्या नियंत्रण

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा जल संसाधन में प्रादेशिक रूप में मात्रात्मक एवं गुणात्मक कमी आने से जल संकट ने उग्र रूप ले लिया है। निरंतर जल की माँग बढ़ती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही कृषि एवं उद्योगों का विस्तार तथा नगरीयकरण बढ़ा है जिससे स्वच्छ जल की माँग भी बढ़ी है। सन 1700 से लेकर 2000 के दशक तक जल की माँग में वृद्धि विकासशील देशों में अधिक रही है। सन 2001 तक सम्पूर्ण दुनिया के लिये प्रतिवर्ष आवश्यक मात्रा 4350 क्यूबिक किलोमीटर आकलित की गई है। इसका 60 प्रतिशत कृषि में, 30 प्रतिशत उद्योगों में तथा 10 प्रतिशत रसोई, स्नान व पेयजल में आवश्यक है। अतः जनसंख्या नियंत्रण के द्वारा भी जल की माँग को नियंत्रित किया जा सकता है तथा साथ ही बढ़ती जनसंख्या द्वारा किए जा रहे जल के गुणात्मक हास को रोका जा सकता है।

सन 2025 तक विश्व की जनसंख्या 8 करोड़ हो जाएगी जिसे मदनेजर रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्पष्ट किया है कि समय रहते जनसंख्या नियंत्रण नहीं किया गया तो सम्पूर्ण विश्व को गम्भीर जल संकट का सामना

करना पड़ेगा। संयुक्त राष्ट्र एवं केन्द्र सरकार ने वर्ष 2003 को ह्यास्वच्छ जल वर्षांग घोषित किया है।

सिंचाई की उन्नत विधियों का उपयोग विश्व स्तर पर वार्षिक जल के उपयोग में से 69 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में उपयोग होता है। कृषि क्षेत्र में आवश्यक जल की पूर्ति सतही जलस्रोत तथा भूमिगत जल से होती है। सिंचाई की उन्नत विधि अपनाकर जल के बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है। सिंचाई में अन्य सभी आवश्यकताओं की तुलना में दोगुने जल की आवश्यकता होती है। फव्वारा तथा बूँद-बूँद सिंचाई विधियों में जल की 50 प्रतिशत बचत होती है। बूँद-बूँद या टपक सिंचाई पद्धति में सतह पर छिद्रदार पाइप का जल फैलाया जाता है जिसे फसल को प्रत्यक्ष रूप में पानी मिल जाता है। इस पद्धति में वाष्णीकरण से हानि नहीं होती है तथा लगभग 95 प्रतिशत जल का उपयोग हो जाता है। इस प्रकार सिंचाई में जहाँ जल का सर्वाधिक उपयोग होता है। संरक्षण के लिये फसल के प्रतिरूप के अनुसार उन्नत सिंचाई पद्धतियाँ अपनाई जानी चाहिए।

वनावरण में वृद्धि

जलीय परिस्थिरण के अंतर्गत प्रतिवर्ष भू-सतह पर वर्षा के रूप में विभिन्न मात्रा में जल प्राप्त होता है। यह जल सतही जलस्रोतों द्वारा प्रवाहित होता हुआ सागरों तक पहुँचता है। इसका कुछ भाग स्थिर जलस्रोतों (झील एवं तालाब) में संग्रहित हो जाता है तथा कुछ मात्रा में भू-सतह के अंदर रिसकर भूजल का रूप ले लेता है। विगत शताब्दी में तीव्र गति से किए गए वनोन्मूलन के कारण वर्षाजल का अधिकांश भाग बिना भूमिगत हुए लवणीय सागरों में मिल रहा है। विश्व में सर्वाधिक वर्षा

प्राप्त करने वाले क्षेत्र चेरापूँजी में विगत दशक में जल संकट उत्पन्न हो गया है क्योंकि यहाँ चूना पत्थर खनन हेतु बनावरण को नष्ट कर दिया गया। फलस्वरूप वर्षाजल तीव्रता से प्रवाहित होकर नदियों में मिल जाता है। ऐसा ही उत्तरांचल के देहरादून क्षेत्र में हो रहा है।

कृषि प्रतिरूप में परिवर्तन

कृषि जलवायु दशाओं के अनुसार फसल बोने पर अतिरिक्त जल की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन विकास के वर्तमान दौर में तीव्रता से बदलते फसल प्रतिरूप के अंतर्गत लाभकारी फसलों ने स्थान पाया है। इन व्यापारिक फसलों को अधिक जल की आवश्यकता होती है। राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी भाग में जल उपलब्धता के अनुपात में फसलें नहीं बोई गई तथा विगत तीन दशकों में सघन कृषि अपना ली गई। जल की उपलब्धता कम होने तथा फसलों में जल की अधिक मांग के कारण भूजल का अतिदोहन किया गया। फलस्वरूप भयंकर जल संकट उत्पन्न हो गया। अतः कृषि जलवायु दशाओं के अनुकूल फसल प्रतिरूप अपनाया जाए। जल की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों में कृषिवानिकी तथा बागानी कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

बाढ़ प्रबंधन

विश्व में बाढ़ के रूप में स्वच्छ जल का बड़ा भाग उपयोग में न आकर विनाशक बन जाता है। भारत के कुल क्षेत्रफल 328 करोड़ हेक्टेयर में से 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है जिसमें से 32 करोड़ हेक्टेयर भूमि को बाढ़ से बचाया जा सकता है। तटबंधों व नहरों का निर्माण करके बाढ़ के नुकसान से बचाव के साथ-साथ जल के बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है। सघन वृक्षारोपण भी बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करके जल को मुदा में शोषित करने में सहायक है। भारत में इस दृष्टि से गंगा, यमुना, महानदी, दामोदर, कोसी आदि के अपवाह तंत्रों को बाढ़ प्रबंधन के अंतर्गत लेकर कुल 1.44 रु. करोड़ हेक्टेयर भूमि को सीमा तक बाढ़ से सुरक्षा प्रदान की गई है।

उद्योगों में जल की बचत

विश्व स्तर पर वार्षिक जल के उपयोग का 23 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग होता है। कुछ विशेष उद्योगों में जल की खपत अधिक मात्रा में होती है तथा कुछ में जल के बड़े भाग को प्रदूषित कर दिया जाता है। रंगाई उद्योग तथा चमड़ा उद्योग इसी प्रकार के उद्योग हैं। एक टन इस्पात के निर्माण में 300 टन तक जल की आवश्यकता होती है। उद्योगों में जल की खपत जल की मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों रूपों में होती है। विकसित देशों में उद्योगों में जल के उपयोग का अनुपात अधिक (50 प्रतिशत) होता है जिसकी आपूर्ति 75 प्रतिशत सही जलस्रोतों तथा 25 प्रतिशत भूमिगत जल द्वारा होती है। उद्योगों में जल को प्रदूषण से बचाने के साथ ही शुद्ध करके पुनः उपयोग का चक्र विकसित किया जाना चाहिए। क्योंकि सामान्यतः किसी औद्योगिक इकाई द्वारा एक बार उपयोग में लिया गया जल भू-सतह पर छोड़ दिया जाता है जो पुनः शोधन कर उपयोग में न लाने पर अन्य जलस्रोतों को भी प्रदूषित करता है। अतः उद्योगों में जल की मात्रा में कमी लाते हुए पुनः उपयोग किया जाना चाहिए।

शहरी अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग

बढ़ते नगरीयकरण से शहरों में जल की मांग में वृद्धि हुई है। विश्व के अनेक देशों में शहरों एवं कस्बों में अपशिष्ट जल के उपचार की व्यवस्था नहीं है जिससे बड़ी मात्रा में जल पुनः उपयोग में आने के स्थान पर दूसरे जल स्रोतों को भी प्रदूषित करता है। यमुना के किनारे स्थित दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि शहरों में यह स्थित दृष्टिगत होती है जबकि अनेक देशों में शहरी जल को उपचारित करके शहर के निकटवर्ती खेतों में सञ्जियों तथा फल उगाने में किया जाता है। शहरों में उपयोग में आने के उपरांत विसर्जित अपशिष्ट जल को उपचार के उपरांत नगरीय परिधि में कृषि उपयोग में लाने से जल संरक्षण के साथ ही विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकती है। निवेजित नगर विकास की नीतियों में इन नियमों का समावेश होना चाहिए।

नगर निकायों द्वारा जल संरक्षण

नगर निकायों द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकता वाले जल के संरक्षण के लिये जल मांग एवं आपूर्ति दोनों पक्षों का प्रबंधन किया जाना चाहिए। शहरों में वर्षाजल को मकानों की छतों पर एकत्रित करने की व्यवस्था को नियमबद्ध लागू करना आवश्यक है।

10.4 वर्षाजल का संचयन

भारत में पारम्परिक जल संग्रह स्थल जनसंख्या के एक बड़े भाग की जलापूर्ति करने में सक्षम रहे हैं लेकिन समय के साथ इनका अवनयन हुआ है। पारम्परिक जलस्रोतों में संग्रहीत जल का उपयोग कृषि एवं पेयजल दोनों रूपों में किया जाता रहा है। सिंचाई के लिये उपयोग में लायी गई पारम्परिक जल संरक्षण की पद्धतियों में पहाड़ी कुहल, जिंग (लद्दाख) कूल, अरुणाचल की जल कुंडियाँ जिन्हें खूप कहते हैं, नागालैंड की जाबो पद्धति, हरियाणा के आबी तालाब, असम के डाले पोखर, महाराष्ट्र के बंधरगार, कर्नाटक के केरे, तमिलनाडु के इरी (तालाब), अंडमान निकोबार के जैकवेल तथा राजस्थान के नाडी, टांका, कुंड, खडीन कुंई, बेरी, बावड़ी, झालरा टोबा आदि महत्वपूर्ण है।

पारम्परिक जल संग्रह प्रणालियों की शुरूआत जावा में सर्वप्रथम 3000 ई. पू. विश्वाल जलागार के निर्माण से हुई। भारत में हडप्पा युगीन धौलावीरा की बसिस्तियों (3000-1500 ई.पू.) में उन्नत जल संचय और नालियों की व्यवस्था का पता चलता है। भारत में वर्षा की प्रकृति के अनुसार ही ये जल संरक्षण की विधियाँ विकसित की गई थीं लेकिन बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु कृषि विस्तार किया गया जिसके कारण इनका अवनयन हुआ है। किसी भी पारम्परिक जलस्रोतों का संरक्षण उसके जलीय भाग तक ही सीमित न होकर संपूर्ण अपवाह तंत्र तक विस्तृत होता है जहाँ से वर्षाजल प्रवाहित होकर उसमें संग्रहीत होता है। निरंतर बढ़ते कृषि क्षेत्र के कारण इनका अपवाह क्षेत्र नष्ट हो गया, जिसके फलस्वरूप इनमें जल की प्रसिद्ध कम हो गई तथा इनका अस्तित्व कम हो गया है।

इन जल संग्रह स्थलों को संरक्षित करके ही जल संकट से निजात पा सकते हैं। किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में जब तक वर्षाजल को पूर्णरूपेण संरक्षित नहीं किया जाएगा तब तक जल संरक्षण की संकल्पना पूर्ण नहीं होगी। अतः मृत हो रहे पारम्परिक जल संग्रह स्थलों को पुनर्जीवित करने के लिये इनकी निगरानी रखनी होगी।

आज संपूर्ण दुनिया इस तथ्य से अवगत हो गई है कि विशाल मात्रा में पाया जाने वाला जल भी बिना संरक्षण के हमारी पकड़ से दूर हो जाएगा। इस दृष्टि से गाँव स्तर पर पारम्परिक जल स्रोतों का स्वामित्व निजी होना चाहिए जिसका समर्थन विश्व बैंक ने किया है।

प्रकृति में उपलब्ध कुल जल संसाधन का एक बड़ा भाग महासागरों में पड़ा है जो लवणीय होने के कारण जैविक समुदाय के लिये उपयोग के योग्य नहीं है। जलमंडल का केवल 26 प्रतिशत भाग ही शुद्ध जल के रूप में हैं जिसका 77.23 प्रतिशत भाग हिमटीपियों, हिमबांडों तथा जिमनदों के रूप में जमा हुआ है। अतः उपयोग योग्य शुद्ध जल का केवल 20.77 प्रतिशत ही है जो भूजल, मृदा, नदी, स्वच्छ जलीय झीलों तथा नदियों में वितरित है। हिम के रूप में जमा जल मानवीय उपयोग से काफी दूर है जो आर्कटिक क्षेत्र, अटार्कटिक महाद्वीप तथा उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित है। पृथ्वी के जलीय परिष्य का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि यहाँ बड़ी मात्रा में जल पाए जाने पर भी उसका आंशिक भाग ही जैविक समुदाय के उपयोग योग्य है जबकि बढ़ती जनसंख्या के साथ जल की मांग भी सतत रूप में बढ़ रही है।

जीवमंडल में पाया जाने वाला जैविक समुदाय मुख्यतः धारातलीय एवं भूजल का ही उपयोग करता है जो सीमित मात्रा में उपलब्ध है तथा जिसका मुख्य स्रोत वर्षाजल है। भू-सतह को प्राप्त होने वाले वर्षाजल का एक बड़ा भाग प्रतिवर्ष बिना उपयोग में लिये प्रवाहित होकर लवणीय सागरों में मिल जाता है, परिणामस्वरूप जल की कमी पूर्ववत बनी रहती है। अतः वर्षाजल के दक्षतम उपयोग (डस्ट्रेई वरी) द्वारा संतुलित रूप में जलापूर्ति सम्भव है। वर्षाजल का संग्रहण विभिन्न उद्देश्यों के लिये किया जाता है जिनमें घेरेलू उपयोग, कृषि के लिये, अकृषि भूमि में प्रवाह नियंत्रण के लिये वर्षाजल का संचयन मुख्य है।

वर्षाजल के संचयन के लिये भारत में विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ विकसित की गई हैं जिनमें प्राचीन काल से वर्षाजल का संचयन किया जाता रहा है। इनमें संचित जल को घेरेलू तथा सिंचाई कार्यों में उपयोग में लिया जाता कश्मीर में 12वीं सदी में सिंचाई व्यवस्था पूर्ण विकसित थी। पूर्वोत्तर राज्यों में 200 वर्ष पूर्व पश्शीली भूमि से बांस की नलियों द्वारा जल संरक्षण की पद्धतियाँ अपना ली गई थीं जो वर्तमान समय में भी विद्यमान हैं।

पश्शीमी भारत में कुंड, कुंई, टांके, तालाब, बावड़ियाँ आदि 500 वर्ष पूर्व विद्यमान थीं जिनमें वर्षा के पानी को संरक्षित करके उपयोग में लाया जाता रहा है। पूर्वी घाट को पहाड़ियों में लोगों ने मध्य पूर्व की तकनीकी के अनुसार पहाड़ियों में नीचे कुओं तक सुरों बनाई जिनसे जल अंतःस्पर्दित होकर कुओं को पूरित करता है। इसी प्रकार पूर्वी पहाड़ियों में वर्तमान बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली की तरह, ही पान के बागानों में सिंचाई हेतु बांस की नलियों द्वारा विकसित की हैं जहाँ पर कोई विकल्प नहीं है। वहाँ वर्षा के पानी को तालाबों में एकत्रित करके सिंचाई करते हैं जिसे मध्य प्रदेश में हवेली कहते हैं।

10.5 वर्षाजल को संग्रहित करने के लिये विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में परंपरागत जल स्रोतों में सुधार के लिये सिफारिशें



क्र.सं.

कृषि जलवायु क्षेत्र

बर्तमान तरीका

संस्कृति

1 उत्तरी-पश्चिमी हिमालय के नमी वाले क्षेत्र

छतों के ऊपर का पानी एकत्रित करना, झरनों के पानी को मोड़कर जमा करना, गाँव के तालाब, पहाड़ी ढालों से प्राप्त पानी का जमा करना

छतों के ढाँचों में सुधार, नालीदार चहरों का प्रयोग जिससे अधिक पानी जुटाया जा सके, पानी को प्रदूषण से बचाने के लिये ढाँचों का सही तरह से निर्माण करना

2 हिमालय के निचले क्षेत्र

तालाब एवं पहाड़ी ढलानों से बहने वाले पानी को जमा करना छतों द्वारा पानी एकत्रित

छतों पर पड़ने वाले पानी को जमा करने के लिये उपर्युक्त व्यवस्था बनाना

3 उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र (नमी एवं अधिक वर्षा वाले)

छतों द्वारा पानी एकत्रित करना, बारहमासी झरनों तथा अन्य जल स्रोतों को

छतों पर पड़ने वाले पानी को जमा करने के लिये उपर्युक्त व्यवस्था बनाना छतों पर गिरने वाले जल को एकत्रित करने की व्यवस्था लाना

4 असम, बंगाल के नमी वाले मैदानी क्षेत्र

तालाब, एनिकट, बांध, नाले कंटूर बांध

तालाबों के निर्माण में सुधार, पानी के प्रदूषण को रोकना व गंदा सफ करना।

5 सतलज गंगा का अर्द्धशुष्क जलोढ़ क्षेत्र

तालाब, नाले, कंटूर बांध

तालाबों के निर्माण में सुधार पानी के प्रदूषण को रोकना

6 उत्तर प्रदेश के अर्द्धशुष्क और शुष्क क्षेत्र

नाडी, टांका, खड़ीन, एनिकट, नाले, कंटूर बांध टांका और नाडी के डिजाइनों में सुधार, अन्तःस्थल बांध ढलवा तार

गविंधन के मध्यवर्ती अर्द्धशुष्क क्षेत्र सुधार तालाब, बांध, कंटूर बांध, नाले अन्तःस्थल बांधारे नाडी, टांका डिजाइनों में सुधार, ढलवांताल, बंधारे बनाना

8 अधिक वर्षा वाले छोटा नागपुर के पठारी क्षेत्र तालाब, एनिकट, बांध, नाले, कंटूर बांध तालाबों में रिसने व वाष्णीकरण द्वारा नष्ट हो रहे पानी को बचाने हेतु उनकी संरचना में सुधार व गाद को साफ करना

9 काली मिट्टी सुनिश्चित और नर्मदा घाटी क्षेत्र वर्षा वाले मालवा पठार

तालाब, रोकने वाले बांध अन्तःस्थल बांध वर्तमान व्यवस्था में सुधार

10 परिवर्ती वर्षा वाले दक्षिण के पठार का अनिश्चित वर्षा वाला दक्षिण मध्य भाग

तालाब, बांध रिसावदार बांध, बंधारा नाले, अन्तःस्थल बांध, कंटूर बांध

समतल पेटी वाले तालाब, पानी के संचालन से जुड़ी व्यवस्था में सुधार, काम में लायी जा रही व्यवस्थाओं में सुधार

11 छत्तीसगढ़ के पठारी क्षेत्र

तालाब, बांध नाले, रिसावदार बांध, बंधारा व अन्तःस्थल बांध, कंटूर बांध

समतल पेटी वाले तालाब, पानी संचालन के व्यवस्था में सुधार

12 दक्षिणी-पूर्वी लाल मिट्टी का क्षेत्र

तालाब, बांध रिसावदार तालाब, अन्तःस्थल बांध

समतल पेटी वाले तालाब पानी के संचालन से जुड़ी व्यवस्था में सुधार, भूजल का बेहतर प्रबंध

13 दक्षिणी के अनियमित वर्षा और मिश्रित वर्षा वाले क्षेत्र

तालाब, जलाशय, रिसावदार तालाब, नाले, अन्तःस्थल बांध

पानी के संचालन से जुड़ी व्यवस्था में सुधार, समतल पेटी वाले तालाब, भूजल का बेहतर प्रबंध

14 दक्षिण के दो प्रकार के वर्षा वाले क्षेत्र जलाशय, तालाब रिसावदार तालाब, नाले बांध, कंटूर बांध

काम में लाई जाने वाली व्यवस्थाओं में सुधार

15 पूर्वी तटीय क्षेत्र

तालाब

सुरक्षित रखे

10.6 राजस्थान में वर्षाजल का संचयन

पानी के उचित प्रबंध हेतु पश्चिमी राजस्थान में आज भी पराती (लोहे का बड़ा बर्तन) में चौकी रखकर उस पर बैठकर स्नान करते हैं, ताकि शेष बचा पानी अन्यत्र घेरेलू उपयोग में आ सके। राज्य में निम्नलिखित जल संरक्षण की संरचनाएँ महत्वपूर्ण हैं-

1. तालाब: बरसाती पानी को संचित करने का तालाब प्रमुख स्रोत है। प्राचीन समय में बने इन तालाबों में अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ बनी हुई हैं। इन्हें हर प्रकार से स्थानीक एवं दर्शनीय स्थल के रूप में विकसित किया जाता है।

इनमें अनेक प्रकार के भित्ति चित्र इनके बरामदों, तिबारों आदि में बनाए जाते हैं। कुछ तालाबों की तलहटी, के समीप कुआँ बनाते थे जिन्हें बेरी कहते हैं।

2. झीलें राजस्थान में जल का परम्परागत ढंग से